सागर के आर-पार

यशपाल जैन

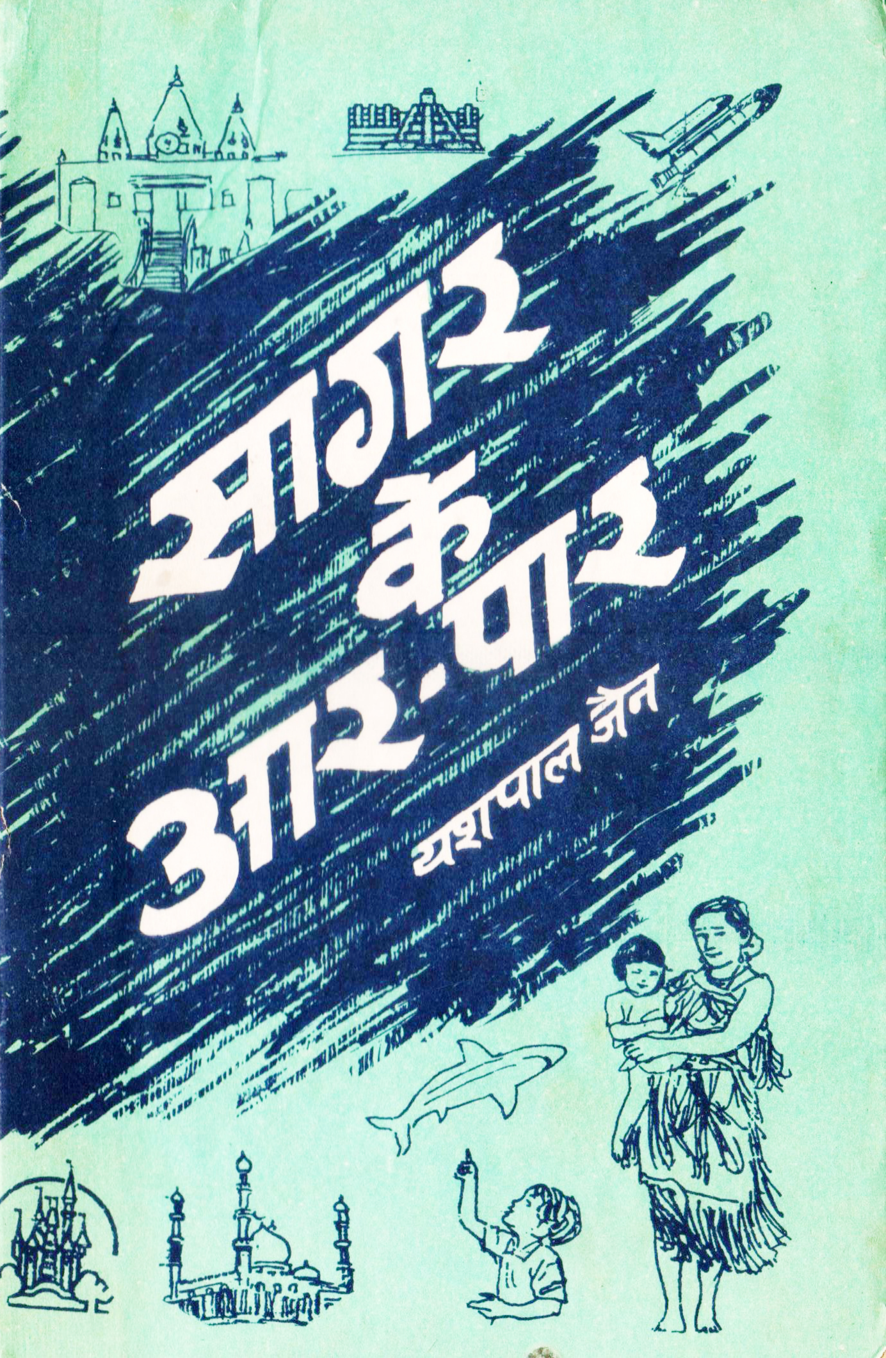

सागर के आर-पार

सूरीनाम, ट्रिनीडाड, अमरीका और कैनेडा
के प्रवास की प्रेरक झांकी

•

यशपाल जैन

•

सस्ता साहित्य मण्डल

१९९२
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

ISBN-81-7309-001-7

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली ११०००१

●

पहली बार : १९९२
प्रतियां : २०००
मूल्य : रु. २०.००

●

लेज़र टाइपसैटिंग :
बुकमैन, शकरपुर, दिल्ली-९२

मुद्रक:
रवीन्द्रा ऑफसैट प्रेस
मानसरोवर पार्क, दिल्ली-३२

मानव-पुरुषार्थ को

जिसने

इस धरा को शस्य-श्यामला बनाया है

—यशपाल जैन

प्रकाशकीय

देश-विदेश के प्रवासों के संबंध में 'मण्डल' ने बहुत-सा साहित्य प्रकाशित किया है। इस साहित्य की सभी क्षेत्रों में बड़ी सराहना की गई है। इसका कारण यह है कि वह साहित्य अत्यन्त सजीव तथा प्रामाणिक है, क्योंकि उसकी रचना व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर की गई है। इनमें से कई पुस्तकों के तो एक से अधिक संस्करण हुए हैं। हिन्दी में इस प्रकार का साहित्य कम ही मिलता है।

हमें हर्ष है कि उस साहित्य में एक नई शृंखला जुड़ रही है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक हाल ही में सद्‌भावना-यात्रा पर सूरीनाम गये थे। वहां से अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन में भाग लेने ट्रिनीडाड। तत्पश्चात उन्होंने अमरीका और कैनेडा के विभिन्न भागों की यात्रा की।

उस सबका बड़ा ही सरस तथा ज्ञानवर्द्धक विवरण इस पुस्तक में दिया गया है। इसे पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगता है, मानो हम भी लेखक के साथ यात्रा कर रहे हैं।

हमें पूरा विश्वास है कि 'मण्डल' की अन्य यात्रा-पुस्तकों की भांति यह पुस्तक भी सभी क्षेत्रों में चाव से पढी जायगी।

—मंत्री

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक के विषय में मैं क्या कहूँ ! मुझे जो कुछ कहना है, वह मैंने इसमें कह दिया है। फिर भी दो-एक बातें कह देना अनावश्यक न होगा। १६ अप्रैल से १६ अप्रैल १६६२ तक चार दिन का एक अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन दक्षिण अमरीका के ट्रिनीडाड ऐण्ड टुबैगो नामक देश की राजधानी पोर्ट ऑफ़ स्पेन में हुआ था। इसका आयोजन वहां की प्रमुख संस्था 'हिन्दी निधि' की ओर से किया गया था। उसमें सहयोगी थे वहां के शिक्षा मंत्रालय, विदेश मंत्रालय, योजना तथा विकास मंत्रालय, भारत का उच्चायोग और वेस्टइंडीज़ का विश्वविद्यालय। भारत सरकार की 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' ने इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए पांच व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा, जो चार दिन सूरीनाम में रुकता हुआ ट्रिनीडाड पहुंचा और सम्मेलन में शामिल हुआ। इस मण्डल का एक सदस्य मैं भी था। इस सम्मेलन में पंद्रह देशों के चालीस हिन्दी-विद्वानों ने हिस्सा लिया। प्रतिदिन तीन-तीन संगोष्ठियां हुईं, जिनमें हिन्दी से संबंधित विभिन्न विषयों पर गंभीर चर्चाएं हुईं।

पुस्तक के पहले चरण में भारत से प्रस्थान से लेकर पोर्ट ऑफ़ स्पेन से विदाई तक का विवरण है।

दूसरे चरण में अमरीका और कैनेडा के विभिन्न स्थानों की यात्रा के विस्तृत विवरण हैं। इन विवरणों को पढ़कर उभय देशों के वर्त्तमान रूप-स्वरूप की झांकी मिल जाती है। चाहता हूं कि पाठक उसे पढ़ें और यात्रा का आनंद लें।

पुस्तक-लेखन का श्रीगणेश टौरेंटो (कैनेडा) में हुआ था। उसका कुछ भाग औटवा में पूरा हुआ। अंतिम भाग अमरीका के

मेरीलैण्ड राज्य स्थित जर्मनटाउन नगर में। इस लेखन में मैंने अपने को उन स्थानों तक ही सीमित रक्खा है, जहां हम लोग इस प्रवास में गये थे। यदि मैं चाहता तो अन्य अनेक स्थानों के विवरण इस पुस्तक में दे सकता था, जहां मैं अपने पिछले तीन प्रवासों में गया था। उन सबको मैंने जान-बूझकर छोड़ दिया है, क्योंकि पुराने ब्यौरों से पुस्तक भी कुछ पुरानी लग सकती थी।

मेरा मन सैलानी है और मैं चाहता हूं कि पाठक भी सैलानी बनें। उसका अपना आनंद है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पाठक पुस्तक को मनोयोग-पूर्वक पढ़ें और देखें कि इस पठन-पाठन से उनके मन में कितना स्फुरण पैदा होता है।

पुस्तक में कुछ निजी विवरण हैं, किन्तु वे भी हमें उस सबके साथ जोड़ते हैं, जो निजी नहीं, सार्वजनिक है।

मुझे हर्ष है कि यह पुस्तक मेरी इक्यासीवीं वर्षगांठ के अवसर पर प्रकाशित हो रही है। पाठक मेरे वंदन स्वीकार करें।

सबका मंगल हो!

—यशपाल जैन

७/८, दरियागंज, नई दिल्ली
१ सितम्बर १९९२

प्रथम चरण

१.	यात्रा का संकल्प और तैयारी	११
२.	दिल्ली से प्रस्थान	१६
३.	सूरीनाम में	२३
४.	पोर्ट ऑफ़ स्पेन में	३७
५.	सम्मेलन का पहला दिन और उद्घाटन	३९
६.	हिन्दी निधि	४४
७.	संगोष्ठियां	४८
८.	सागर-तट पर	५३
९.	आदेश-आश्रम में	५६
१०.	ट्रिनीडाड से विदाई	६१
११.	यात्रा में व्यवधान	६४

द्वितीय चरण

१२.	जर्मनटाउन (मेरीलैण्ड) में	६७
१३.	बाबा मुक्तानंद और गुरुमाई के आश्रम में	७७
१४.	नियाग्रा प्रपात पर	९२
१५.	वाह री कैलाबोगी !	९६
१६.	कैनेडा में	१०१
१७.	विश्व का एक आश्चर्य	११५
१८.	द्यूतनगरी अटलांटिक सिटी	१२०
१९.	जगत-प्रसिद्ध फ़्लोरिडा	१२३
२०.	प्रवास के अंतिम दिन	१३५
२१.	कुछ बोलते चित्र	१३८
२२.	यात्रा का समापन	१४२

सागर के आर-पार

१/यात्रा का संकल्प और तैयारी

मेरा लड़का सुधीर विगत २४ वर्ष से कैनेडा में सपरिवार रहता है। अकेला लड़का है। मिलने की दोनों ओर से स्वाभाविक इच्छा होती है। थोड़े-थोड़े अंतराल पर हम लोग टौरेंटो (कैनेडा) में, जहां वह रहता है, या दिल्ली में, जहां मैं रहता हूं, मिलते रहते हैं। सन् १६६० में, जब मुझे 'पद्मश्री' की उपाधि मिली थी, हम दिल्ली में मिले थे। उससे पहले मेरा धेवता पराग पाटनी मेरीलैण्ड (अमरीका) के जर्मनटाउन में बस गया। दोनों का आग्रह था कि मैं कैनेडा और अमरीका आऊं। काफी दिनों तक विचार-मंथन चलता रहा। अस्सी वर्ष की अवस्था में मेरी बेटी अन्नदा पाटनी नहीं चाहती थी कि इतने लम्बे प्रवास पर मैं अकेला जाऊं। संयोग से उसकी अमरीका की यात्रा की सुविधा हो गई। तब मेरे लिए सोचने का विशेष अवसर नहीं रहा। एक द्विविधा थी। मेरी बेटी को अमरीकी एयरलाइन्स डेल्टा से जाना था, जिसका उसके पास टिकट था। मुझे एयर इंडिया से जाना था। फिर १५ अप्रैल के बाद यात्राओं का मौसम आरंभ हो रहा था और हवाई जहाज़ों के किराये में दस प्रतिशत की वृद्धि हो जाने वाली थी। सोच-विचार के पश्चात मैंने १२ अप्रैल १६६२ को जाने का

निश्चय किया। अन्नदा का आरक्षण १६ अप्रैल का हुआ।

पर आदमी सोचता कुछ है, हो कुछ और जाता है। संकल्प के अनुसार जब हम दोनों यात्रा की तैयारी कर रहे थे, अकस्मात 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' (भारत सरकार) के एक अधिकारी का फोन आया कि दक्षिण अमरीका के कैरेबियाई देश ट्रिनीडाड ऐण्ड टुबैगो की राजधानी पोर्ट ऑफ़ स्पेन में एक अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन हो रहा है। उसमें मुझे भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के एक सदस्य के रूप में सम्मिलित होना है। मेरा कार्यक्रम तो पहले से ही बन चुका था। अतः मैंने प्रतिनिधि-मण्डल में जाने से आनाकानी की, पर उन्होंने बहुत ज़ोर दिया तो मैंने पुनर्विचार किया और जब अधिकारी ने बताया कि ट्रिनीडाड जाने का मार्ग ऐसा है कि उसमें अमरीका स्वतः ही शामिल हो जायगा, मुझे अपने पास से केवल वाशिंगटन से टौरेंटो आने-जाने की व्यवस्था करनी होगी तो मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। १२ अप्रैल को एयर इंडिया के विमान से रवाना होने का तय हो गया। परिषद के अधिकारी ने बताया कि हमारा प्रतिनिधि-मण्डल ट्रिनीडाड से सूरीनाम होकर न्यूयार्क आयेगा और वहां से मैं वाशिंगटन चला जाऊंगा।

सन् १९७२ में मैं सूरीनाम, गयाना और ट्रिनीडाड की यात्रा कर आया था। उन देशों में सूरीनाम भारतीय-बहुल देश है। वहां अनेक व्यक्ति और संस्थाएं हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति के उन्नयन के लिए बड़ी निष्ठा से कार्य करती हैं। गयाना और ट्रिनीडाड में भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए यत्न हो रहा है, पर उतना नहीं, जितना

सूरीनाम में हो रहा है। इन तीनों देशों में लगभग एक महीना रहकर मैं वहां की प्रवृतियों को अच्छी तरह देख चुका था। अनेक हिन्दी-प्रेमियों, हिन्दी-सेवियों तथा संस्थाओं से मेरे घनिष्ठ संबंध जुड़ गये थे, जो विगत बीस वर्षों में न केवल हरे-भरे रहे थे, बल्कि और भी गहरे हो गये थे। उन लोगों और संस्थाओं की हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति के प्रति लगन देखकर मैंने 'सस्ता साहित्य मण्डल' की उपलब्ध पुस्तकों के कुछ सेट भेंट-स्वरूप वहां भिजवाये थे।

सूरीनाम के अनन्य साधक बंधुवर महातम सिंह और ट्रिनीडाड के विख्यात हिन्दी लेखक और कलाकार प्रो० हरिशंकर 'आदेश' इन वर्षों में कई बार भारत आये थे। वे दोनों ही हिन्दी-अधिकारी के रूप में 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' की ओर से वहां भेजे गये थे। उन्होंने उन देशों में बड़ा सघन कार्य किया था। वे दोनों मेरे परिवार के अंग बन गये थे। एक तीसरे व्यक्ति थे हिन्दी-संस्कृत के विद्वान भाई योगिराज शास्त्री, जो गयाना में नियुक्त थे। उन्होंने भी वहां अच्छी सेवा की थी। उन तीनों की ही नियुक्तियां समाप्त हो गईं तो आदेश और योगिराज कैनेडा चले गये। महातम सिंह सूरीनाम में ही अपना हिन्दी-प्रचार-प्रसार का काम स्वतंत्र रूप से करते रहे। आदेश ने भी अपना आश्रम ट्रिनीडाड में बनाये रक्खा और कैनेडा से बार-बार वहां आकर हिन्दी, संगीत, नृत्य आदि की प्रवृत्तियां चलाते रहे। योगिराज का संबंध कुछ समय बाद गयाना से टूट गया।

उन कैरेबियाई देशों के साथ अपने संबंधों का स्मरण करके एक

बार पुनः वहां जाने के अवसर ने मुझे पुलकित कर दिया।

१२ अप्रैल को सवेरे के विमान से जाने का निश्चय हुआ था। लेकिन ऐन मौक़े पर कार्यक्रम में थोड़ा परिवर्तन हो गया। कान्फ्रेंस के बाद सूरीनाम जाने की जगह वहां पहले जाने का तय हुआ, इसलिए १२ अप्रैल की तिथि टल गई और दो दिन पहले अर्थात १० अप्रैल को जाना पक्का हुआ।

मेरी बेटी अन्नदा बिरलाग्राम (नागदा, मध्य प्रदेश) में रहती है। उसे भी दिल्ली से रवाना होना था। १२ अप्रैल के मेरे कार्यक्रम के अनुसार वह १० तारीख को दिल्ली आ जाने वाली थी। अब उसे ८ तारीख को आने को कहा तो वह सपरिवार उस दिन वहां पहुंच गई।

मैं कुरता, धोती और जाकेट पहना करता हूँ। यात्रा के लिए उन्हीं की व्यवस्था की थी, पर जब मेरे जामाता कमल कुमार पाटनी दिल्ली आये और मेरे कुरते-धोती दखे तो उन्होंने कहा, इनसे काम नहीं चलेगा। सूरीनाम और ट्रिनीडाड के बाद मुझे कैनेडा और अमरीका में भी रहना था। उस लम्बे प्रवास के लिए उन्होंने खादी भवन से कमीज़ें ख़रीदीं और खादी की पतलूनें न मिलने पर, मेरी इच्छा के विरुद्ध, मिल के खादी-जैसे कपड़े की दो पतलूनें तैयार करवाईं। और भी कई नई चीज़ें ख़रीदीं और इस प्रकार दो दिन में मेरी सारी तैयारी कर दी। मैं चाहता था कि सामान कम-से-कम रहे, किन्तु खादी की धोतियों तथा कुरतों आदि ने मेरे बोझ को बहुत

बढ़ा दिया। ढाई-तीन महीने की यात्रा के हिसाब से उनकी व्यवस्था करनी आवश्यक थी।

सूरीनाम, ट्रिनीडाड और अमरीका के वीज़ा की व्यवस्था परिषद ने कर दी थी। मुझे कैनेडा का वीज़ा लेना था। दो दिन की भाग-दौड़ के बाद वह मिल गया। परिषद के अधिकारी ने बताया कि दक्षिण अमरीका के लिए 'यलो फ़ीवर' का टीका लेना अनिवार्य है। ६ तारीख़ की शाम को नई दिल्ली नगर पालिका के स्वास्थ्य-केन्द्र में जाकर टीका लगवाया।

निश्चय हुआ कि मैं सूरीनाम और ट्रिनीडाड होकर २१ अप्रैल को वाशिंगटन डी० सी० पहुंचूंगा। अन्नदा वहां १६ को पहुंच जायगी। अन्नदा को इस बात का बड़ा संतोष था कि मैं अकेला नहीं जा रहा हूं। चार अन्य व्यक्ति साथ हैं।

पोर्ट ऑफ़ स्पेन में होने वाले चार दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के विषय में हमें कोई जानकारी नहीं थी। सम्मेलन इतनी जल्दी में आयोजित किया गया था कि उसके बारे में विस्तार से कुछ भी सामग्री तैयार नहीं हुई थी। परिषद ने तय किया कि प्रतिनिधि-मण्डल के सब सदस्य ६ अप्रैल की शाम को मण्डल के नेता शंकर दयाल सिंह के निवास-स्थान पर मिल लें। हम मिले, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की महानिदेशक वीणा सीकरी भी वहां आई थीं, पर किसी को इस बात की जानकारी नहीं थी कि हमें वहां जाकर क्या करना है। चूंकि सम्मेलन हिन्दी से संबंधित था, कई देशों के प्रतिनिधि उसमें शामिल हो रहे थे, और उसके संयोजन में ट्रिनीडाड में अवस्थित भारतीय उच्चायोग का भी हाथ था, अतः भारत के तत्कालीन

उपराष्ट्रपति और परिषद के अध्यक्ष डा० शंकर दयाल शर्मा ने भारत के प्रतिनिधित्व का निश्चय कराया था।

प्रतिनिधि-मण्डल में थे, सर्वश्री शंकर दयाल सिंह, (राज्यसभा के सदस्य), बच्चू प्रसाद सिंह (सूरीनाम में भारत के भूतपूर्व राजदूत) राजेन्द्र अवस्थी (पत्रकार, सम्पादक, कादम्बिनी), माजदा असद (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जामिया मिलिया) और यशपाल जैन (मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल)।

२/दिल्ली से प्रस्थान

एयर इंडिया का विमान इंदिरा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे से दोपहर १० बजकर १० मिनट पर रवाना होने वाला था। हम ८ बजे के क़रीब वहां पहुंच गये। परिषद के अधिकारी विनोद कुमार और टामस कुक ट्रेविल एजेंसी का एक कर्मचारी वहां पहले से ही पहुंच गये थे। हवाई अड्डे की सारी औपचारिकताएं पूरी हो जाने पर हम लोग काफ़ी देर तक सामान्य यात्री कक्ष में बैठकर बातें करते रहे, फिर पासपोर्ट की जांच तथा सुरक्षा की कार्रवाई से छुट्टी पाकर विशिष्ट व्यक्तियों के कक्ष में चाय-कॉफी पीते रहे। हम चार व्यक्ति पहले पहुंच गये थे। दल के नेता शंकर दयाल सिंह बाद में आए। हमारी टोली के सबसे मुखर व्यक्ति शंकर दयाल सिंह ही थे। ख़ूब हंसते थे और ख़ूब हंसाते थे। बच्चू प्रसाद सिंह के पास अनुभव का

ख़ज़ाना था। देश-विदेश में उन्होंने ख़ूब भ्रमण किया था। उनकी स्मरण-शक्ति अद्‌भुत थी। प्रत्येक अवसर की घटनाएं उनके मस्तिष्क में संचित थीं। विमान एक घंटा देर से चला, लेकिन वह विलम्ब अखरा नहीं, सजीव चर्चा में समय निकल गया।

विमान में हमारी तीन टोलियां बनीं। सांसद के नाते शंकर दयाल सिंह प्रथम श्रेणी में थे, बच्चूबाबू और राजेन्द्र अवस्थी दूसरी टोली में और माजदाबहन और मैं तीसरी में। यात्रा लम्बी थी। हमारा विमान बिना रुके लन्दन के हीथ्रो हवाई अड्डे पहुंचने वाला था। ३७७ सीटों का बड़ा जहाज़ था। सारी सीटें भरी थीं। सीटें आरामदेह थीं। मौसम अच्छा था। सफ़र भारी नहीं पड़ा। जहाज़ उड़ने के थोड़ी देर बाद जलपान मिला, फिर खाना। खाना भारतीय था। संगीत सुनवाया गया। फिल्म दिखाई गयी।

जब हमारा विमान हीथ्रो हवाई अड्डे पर उतरा, मेरी घड़ी में ७ बजकर ४५ मिनट हुए थे। भारत और लंदन के समय में ६ घंटे का अंतर है। वहां की घड़ी में पौने तीन बजे थे। तापमान १६ डिग्री था। उच्चायुक्त डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी की ओर से भारतीय उच्चायोग के श्री सिंह और हिन्दी तथा संस्कृति विभाग के डा० सुरेन्द्र अरोड़ा हवाई अड्डे पर उपस्थित थे। यहां हमें विमान बदलकर हॉलैण्ड की राजधानी एम्सटर्डम जाना था। उच्चायोग के दोनों बंधुओं ने बड़ी आत्मीयता से सारी कार्यवाही कराई। लक्ष्मीमल्लजी से फ़ोन पर बात हुई। उन्हें शिकायत थी कि सूरीनाम जाते हुए हम लोग वहां क्यों नहीं रुके। उनका आग्रह था कि लौटते समय मैं अवश्य रुकूं। मेरे प्रति उनकी आत्मीयता विरल रही है। उस आत्मीयता में उनकी पत्नी कमलाजी की आत्मीयता भी समाई हुई है।

हम लोग तीन नंबर के गेट पर उतरे थे। एम्सटर्डम जाने के लिए हमें किसी अन्य गेट पर जाना था। उच्चायोग के बंधुओं ने ट्रालियों पर हमारा समान रखवाकर वहां पहुंचाया। आवश्यक खानापूरी की और कुछ देर हम निःशुल्क चीजों की दुकानों पर घूम-घामकर सुरक्षा जांच कराकर के० एल० एम० के जहाज़ में जा बैठे। लंदन के हवाई अड्डे पर हमें दो घंटे मिले।

मुझे याद आया कि पिछली बार जब मैं सपरिवार आया था तो टौरेंटो (कैनेडा) जाने वाले जहाज़ के लिए हमें यहां हीथ्रो हवाई अड्डे पर साढ़े दस घण्टे रुकना पड़ा था, किन्तु एयर इंडिया द्वारा विशिष्ट व्यक्तियों के आतिथ्य की व्यवस्था करा देने के कारण हमें खाने-पीने, विश्राम करने तथा समाचार-पत्रों की सुविधा मिल गई थी और समय अखरा नहीं था।

के० एल० एम० के इस विमान में एक विशेषता थी। पांच-पांच, सात-सात मिनट बाद हमारे मार्ग का नक्शा मानीटर पर आता था और उसमें एक तीर द्वारा बताया जाता था कि हमारा विमान कहां उड़ रहा है। इसके अतिरिक्त यह भी बताया जाता था कि विमान कितनी ऊंचाई पर उड़ रहा है और उसकी रफ़्तार क्या है। यह जानकारी जहां ज्ञानवर्द्धक थी, वहां रोचक भी थी। चालीस मिनट का वह रास्ता कब पार हो गया, पता भी नहीं चला।

एम्सटर्डम का हवाई अड्डा बहुत बड़ा और शानदार है, बहुत साफ़-सुथरा है। पूरा नगर ही दर्शनीय है। हमें रात भर वहां के पुलमैन होटल में ठहरना था और सवेरे के विमान से पारामारीबो (सूरीनाम) जाना था। पुलमैन होटल के आदमी ने वहां की औपचारिकताएं पूरी कराईं। जब हम होटल की बस की ओर बढ़े, जो कुछ ही दूरी पर

हवाई अड्डे के बाहर खड़ी थी, उस आदमी ने कहा, "यहां चोरियां बहुत होती हैं। अपने सामान, ख़ासकर पासपोर्ट और पर्स (बटुवे के बारे में सावधान रहिये।" पता नहीं, उसकी बात में कितनी सच्चाः थी, पर सुनकर मुझे बुरा लगा। एम्सटर्डम, हॉलैण्ड (नीदरलैण्ड्स की राजधानी है। अपने सौंदर्य के लिए सारे संसार में विख्यात है वहां का लोकजीवन विकृत हो, यह मेरे मन को स्वीकार्य नहीं था तभी मुझे रोम के हवाई अड्डे की पुरानी घटना याद आ गई, जब किसी अजनबी यात्री ने मुझसे पूछा था कि आपका सामान कहां है और मेरे यह कहने पर कि उधर पड़ा है तो उस आदमी ने मुझे चेतावनी दी थी, "महोदय, पहले अपना सामान उठाकर अपने पास रक्खो।" मैं उस सदाशयी विदेशी बन्धु की ओर देखता रह गया था। कला की उस महान नगरी में बाद में मुझे जो कटु अनुभव हुए, उनकी कहानी बड़ी दुःखद है।

बस से हम लोग होटल पहुंचे। वसंत का आगमन हो रहा था, पर पतझड़ का प्रभाव अभी दूर नहीं हुआ था। मार्ग के दोनों ओर पत्र-विहीन वृक्ष खड़े थे। बीच-बीच में खेतों की हरियाली उस समरसता को भंग कर रही थी। रास्ता साफ़-सुथरा और सुंदर था। शाम हो चली थी। बिजली की रोशनी में नगर जगमगाने लगा था।

हम सबको होटल में अलग-अलग स्वतंत्र कमरा मिल गया। यात्रियों की कोई टोली आई थी, जिसमें अधिकांश छात्र-छात्राएं दिखाई देते थे। उनकी व्यवस्था हो जाने पर हमारी बारी आयी। उसमें समय लग गया। कमरों की चाबियां मिलने पर पोर्टर ने कमरों में सामान पहुंचा दिया। हमारी इच्छा थी कि सवारी की व्यवस्था हो जाए, तो हम दो घंटे शहर का चक्कर लगा लें, लेकिन राजेन्द्र अवस्थी के

एक मित्र आ गये और वह बच्चूभाई और राजेन्द्र अवस्थी को अपनी कार में शहर ले गये। शंकर दयाल सिंह भोजन करने चले गये। जो व्यवस्था की गई थी, उसमें केवल प्रथम श्रेणी के यात्री का भोजन शामिल था। शेष को अपना प्रबंध स्वयं करना था। डाइनिंग हॉल की ओर जाते-जाते शंकर दयाल सिंह ने मुझसे कहा कि उनकी जगह मैं भोजन कर आऊं, पर उनका सौजन्य मुझे स्वीकार्य नहीं हुआ। माजदाबहन और मैं दो जने रह गये। यह सोचकर कि इधर-उधर कुछ देर चक्कर लगा लें, हम दोनों बाहर आये, पर चारों ओर सन्नाटा छाया था। बस्ती काफ़ी दूर थी। उस अपरिचित जगह में कहां जाते? फिर मौसम भी कुछ ठण्डा हो गया था और मैं कुरता, धोती और सूती जाकेट पहने हुए था। हम लोग होटल के फाटक तक जाकर लौट आये और अपने-अपने कमरों में जाकर सो गये। पर रातभर नींद नहीं आई। बार-बार आंख खुलती रही।

सवेरे पांच बजे उठ गया। नहा-धोकर साढ़े छः बजे तैयार हो गया। आठ बजे नाश्ता करने गया, जो होटल की व्यवस्था में शामिल था। बढ़िया नाश्ता मिला। रात की कमी पूरी हो गई। अन्य वस्तुओं के साथ फल मिले। छाछ मिली। आनंद से नाश्ता किया। साढ़े आठ बजे बस आ गई और पंद्रह मिनट में हम लोग हवाई अड्डे के लिए रवाना हो गये। हॉलैण्ड बड़ा समृद्ध देश है और लोग ख़ूब पुरुषार्थी हैं।

सामान तुला, पासपोर्ट देखे गये। सारी ख़ाना-पूरी दस मिनट में हो गई। अधिकांश विभागों में लड़कियां काम करती हैं। सारा काम कम्प्यूटर से मिनटों में हो जाता है। कर्मचारियों का व्यवहार बड़ा मधुर था। उनके चेहरे फूल के समान खिले थे। न तनिक भी तनाव

था, न उतावली। यात्रियों की बड़ी भीड़ थी। ज़्यादातर ट्रिनीडाड और सूरीनाम में रहने वाले भारतवंशी थे। शक्ल-सूरत और रंग से वे भारतीय लगते थे, पर वेश-भूषा और भाषा की दृष्टि से एकदम विदेशी थे।

विमान बारह बजे रवाना होना था। हमारे पास काफ़ी समय था। दुकानों पर चक्कर लगाते रहे। सब तरह की चीज़ें थीं। पुस्तकों और अख़बारों की एक बहुत बड़ी दुकान थी। सभी विषयों का साहित्य उपलब्ध था। पुस्तकों की छपाई, काग़ज़, जिल्द देखकर तबीयत खुश होती थी। पुस्तकों को देखते-देखते मुझे लगा कि प्रकाशन के उस स्तर पर पहुंचने में हमें अपने देश में बरसों लग जायंगे।

हमसब ने अपनी-अपनी पसंद की कुछ चीज़ें ख़रीदीं। सूरीनाम और ट्रिनीडाड में मित्रों को उपहार-स्वरूप देने के लिए मैं कुछ सामान ख़रीदना चाहता था, पर चीज़ों के दाम देखकर हिम्मत नहीं हुई। यहां की यादगार के रूप में तीन पेन ख़रीदे, जिनके ऊपरी भाग में 'हॉलैण्ड' अंकित था।

ठीक बारह बजे के० एल० एम० के ७६१ विमान ने उड़ान भरी। हमें पहले ट्रिनीडाड की राजधानी पोर्ट ऑफ़ स्पेन जाना था और थोड़ी देर रुक कर पारामारीबो (सूरीनाम) पहुंचना था। इस विमान में भी वही सब सुविधाएं थीं, जो लंदन से एम्सटर्डम आने वाले जहाज़ में थीं, यानी मार्ग का परिचय और विमान की उड़ान की ऊंचाई और गति आदि की जानकारी। कभी-कभी जहाज़ तीस हज़ार फुट की ऊंचाई पर उड़ा, कभी दस हज़ार पर, मौसम कुल मिलाकर साफ़ होने के कारण यात्रा सुविधाजनक रही।

रात के ६.५० पर पोर्ट ऑफ़ स्पेन पहुंचे। काफ़ी यात्री यहा पर

उतर गये। हम लोगों को आगे जाना था, इसलिए विमान के दरवाज़े पर आकर खड़े हो गये और छोटे-से हवाई अड्डे को दूर से ही देखते रहे। यात्रियों के रूप-रंग को देखकर ऐसा लगता था, मानो हम भारत में हैं।

एक घंटा रुककर विमान आगे बढ़ा और कोई एक घंटे की उड़ान के बाद पारामारीबो के हवाई अड्डे पर उतर गया। वहां पर भारतीय उच्चायोग के द्वितीय सचिव श्री हंसराज ने हमारी अगवानी की। हमें अतिथि-कक्ष में ले जाया गया। उसका एक भाग विशिष्ट-व्यक्तियों के लिए था। सूरीनाम के विदेश मंत्री किसी कान्फ्रेंस में कहीं बाहर जा रहे थे, इसलिए उस भाग में पड़े सोफा आदि पर वह मंत्री और उनके परिवार के लोग विराजमान थे। उसे ज़ंजीर द्वारा अलग कर दिया गया था। हम लोग भीड़ में घूमते रहे। जब मंत्री को हमारा परिचय दिया गया तो उन्होंने ज़ंजीर हटवा दी और बड़े उत्साह से हमारा स्वागत किया। शर्बत मंगवाया। कुछ देर बातें करके वह चले गये। तबतक हमारा सामान आ गया। हंसराज ने हवाई अड्डे की औपचारिकताएं पूरी कराईं और एक मिनी बस से हमें रिवर क्लब होटल पहुंचाया, जहां हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। यह होटल हवाई अड्डे से पचास-साठ किलोमीटर था।

अब हम सूरीनाम में थे।

३/सूरीनाम में

मैं पिछली बार सन् १९७२ में सूरीनाम गया था। इन बीस वर्षों में बहुत कुछ बदल गया था। नये-नये भवन बन गये थे। आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य क्षेत्रों में भारी परिवर्तन आ गया था। नहीं बदली थी तो वहां की जलवायु। सूरीनाम दक्षिण अमरीका के उत्तरी-पूर्वी तट पर अवस्थित है। उसका क्षेत्रफल एक लाख चौदह हजार वर्ग किलोमीटर है। अधिक सर्दी-गर्मी से मुक्त वहां का मौसम सुहावना बना रहता है। ऊनी कपड़ों की ज़रूरत नहीं पड़ती, सूती कपड़ों से काम चल जाता है।

अपने-अपने कमरों में सामान रखकर हम लोग थोड़ी देर बातें करते रहे। फिर हंसराज आदि सरकारी अधिकारी चले गये। मैंने अपने मित्र महातम सिंह को फ़ोन कर दिया था। वह घर पर नहीं थे। कुछ ही समय बाद उनका फ़ोन आया कि वह आ रहे हैं। सब साथी सो गये। मैं जागता रहा। काफ़ी देर गये महातम सिंह अपनी पत्नी और भारतीय उच्चायोग की हिन्दी अधिकारी सरोज भटनागर के साथ आये। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि मैं एक बार फिर सूरीनाम आऊं। वह मुझे बार-बार अपने पत्रों में लिखते रहते थे। मिलकर बहुत खुश हुए। अपने 'माता गौरी संस्थान' के विकास की कहानी सुनाते रहे। वह भी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन में भाग लेने ट्रिनीडाड जा रहे थे, पर उन्हें भी उस आयोजन के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

उन्होंने बताया कि हम लोगों की सूरीनाम की यात्रा सरकारी यात्रा नहीं है, सद्भावना-यात्रा है। कुछ व्यक्तियों ने भारतीय उच्चायोग से अनुरोध किया था कि वे उनकी ओर से 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' से निवेदन कर दें कि प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्य ट्रिनीडाड के सम्मेलन के बाद चार दिन के लिए सूरीनाम भी आ जायें। उच्चायोग के निवेदन को परिषद ने स्वीकार कर लिया, लेकिन कुछ कारणों से प्रतिनिधि-मण्डल को सम्मेलन से पहले भेजने की अनुकूलता जतलाई, जिसे परिषद ने मान लिया। वे लोग यह भी चाहते थे कि खर्च में कमी करने के लिए प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्यों को विभिन्न परिवारों में ठहरा दें, उसी के अनुसार व्यवस्था की जाने लगी, किन्तु अंत में सबको एक साथ होटल में ठहराने का निश्चय किया गया और उस भार को उच्चायोग ने वहन करना स्वीकार कर लिया।

बातों का अंत न था। रात तेजी से आगे बढ़ रही थी। वे लोग अगले दिन मिलने की कहकर चले गये।

दिन भर का थका था। बिस्तर पर लेटते ही नींद आ गई। अगले दिन (१२ अप्रैल को) रविवार था। हंसराज ने बड़े तड़के आकर हमें चारों दिन का टंकित कार्यक्रम दिया। उसके अनुसार हमें ठीक साढ़े नौ बजे सूर्य मंदिर जाना था और कार्यक्रम के पश्चात वहीं भोजन करना था। हम सब तैयार होकर साढ़े सात बजे जलपान की मेज़ पर पहुंच गये और नाश्ता करके भारतीय उच्चायोग गये। वहां उच्चायुक्त आई० के० चोपड़ा और हिन्दी अधिकारी सरोज भटनागर बड़ी आत्मीयता से मिले। श्री चोपड़ा ने सूरीनाम के इतिहास और वर्तमान राजनैतिक स्थिति पर प्रकाश डाला। बताया कि किस प्रकार

स्पेन के जहाज़ी लोगों ने सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में उसकी खोज की थी और अंत में स्पेन के बादशाह ने सन् १५६३ में उसे अपने कब्ज़े में कर लिया था। तत्पश्चात यरोपीय शक्तियों द्वारा सूरीनाम को अपने हाथ में लेने के लिए कई लड़ाइया हुईं और वह स्पेन के हाथ से निकल कर पुर्तगालियों के अधिकार में आ गया, फिर अंग्रेजों के, और अंत में डचों ने बुरडा की संधि के अंतर्गत अंग्रेजों से उसे अपने अधिकार में ले लिया। उन्होंने ईख और चीनी का धंधा बढ़ाया, जिसके लिए काले दासों की बड़ी संख्या में जरूरत थी। लेकिन सन् १८६३ में जब सूरीनाम में दास-प्रथा का अंत हो गया तो भारत से करार-बंद मज़दूर लाये गये। इन प्रवासी भारतीयों का पहला जहाज़ सन् १८७३ में वहां आया, किन्तु भारत के राष्ट्रीय नेताओं के दबाव के कारण बरतानिया की सरकार ने सन् १६१७ में शर्तबंद मज़दूरों की प्रथा को रोक दिया। तबतक लगभग तैंतीस हज़ार भारतीय सूरीनाम आ चुके थे। कुछ मज़दूर जावा (इंडोनेशिया) और चीन से भी लाये गये थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद डच शासकों ने सूरीनाम को अधिक-से-अधिक स्वायत्तता प्रदान की और भारतीयों ने अपने को 'यूनाइटेड हिन्दुस्तानी पार्टी' (वी० एच० पी०) नामक राजनैतिक पार्टी के अंतर्गत संगठित किया। १६७५ में सूरीनाम स्वतंत्र हो गया।

अंत में उन्होंने बताया कि इस समय सूरीनाम की आबादी चार लाख से कुछ अधिक है, जिसमें प्रवासी भारतीय लगभग पौने दो लाख हैं। यहां की राष्ट्रभाषा डच है। भारतीयों में भोजपुरी का चलन है। अधिकांश भारतीय खेती-बारी करते हैं, पर कुछ डाक्टर, वकील,

प्रोफेसर आदि हैं। राजनीति में भी उनका प्रवेश हो गया है और वे ऊंचे पदों पर हैं। राष्ट्रीय एसेम्बली के अध्यक्ष श्री जगन्नाथ लछमन हैं। उपराष्ट्रपति जूल्स अयोध्या हैं। एसेम्बली आदि में और भी कई भारतीय हैं।

लेकिन अभी यहां की राजनैतिक स्थिति स्थिर नहीं है। पिछले दिनों सेना ने विद्रोह करके राजसत्ता अपने हाथ में ले ली थी। अर्थ-व्यवस्था भी संतोषजनक नहीं है। यहां बॉक्साइट की खानें हैं, जिनसे एल्यूमूना तैयार होता है। एल्म्यूनियम यहां का मुख्य धंधा है। उससे लगभग ८५% विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। कृषि, मत्स्यपालन तथा केला आदि अन्य व्यवसाय हैं। बड़े-बड़े उद्योग-धंधे यहां नहीं के बराबर हैं। उपभोक्ता वस्तुएं, यहां तक कि खाद्य सामग्री, आलू, प्याज तक, बाहर से आती हैं।

श्री चोपड़ा के रुकने पर श्री शंकर दयाल सिंह ने प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यों का विस्तृत परिचय दिया, और यात्रा के उद्देश्य बताते हुए भारत की वर्तमान राजनीति की चर्चा की। मैंने उन्हें बताया कि राजनीति में हमेशा उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, किन्तु पारस्परिक संबंधों को स्थिरता संस्कृति प्रदान करती है। इसलिए राजनीति के साथ-साथ हमारा बल सांस्कृतिक संबंधों को प्रगाढ़ करने पर होना चाहिए।

हमें समय पर सूर्य मंदिर जाना था। श्री चोपड़ा को भी हमारे साथ जाना था। अतः हम लोग मंदिर की ओर रवाना हो गये।

पिछले दिन रामनवमी थी। उसका समापन आज था। मंदिर में कुमारी भोलासिंह नाम की एक छात्रा व्यास-पीठ पर बैठी रामकथा

कह रही थी। उसका कण्ठ इतना मधुर था कि सब लोग मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। हमारे पहुंचने पर थोड़ा व्यवधान पड़ा, फिर सिलसिला चालू हो गया। अंत में हमारा स्वागत किया गया। संस्था के अध्यक्ष चांदी सूर्यबली बोले, हम सबके भाषण हुए। राजेन्द्र अवस्थी ने भक्ति संगीत के कुछ कैसेट भेंट किये। सारा वातावरण बड़ी आत्मीयता से परिपूर्ण था। आरती के बाद भोज हुआ। हम लोगों के लिए एक विशेष कक्ष में खाने का प्रबंध था।

मंदिर सूर्य को समर्पित था। उसमें सबसे बड़ी मूर्ति हंसवाहिनी देवी की थी। कीर्त्तन बड़ा अच्छा था। एक छोटा बालक अत्यन्त तल्लीनता से एक वाद्य बजा रहा था।

हमें यह जानकर बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ कि उस छोटे-से देश में सनातन धर्म और आर्य समाज के लगभग सौ मंदिर हैं और लगभग पचास सुन्नी और अहमदिया मस्जिदें हैं।

मंदिर में अनेक भारतीयों से भेंट हुई। उनमें कुछ मेरे पिछले प्रवास के परिचित लोग थे। कुछ नये थे। उन सबके बीच ऐसा लगा, जैसे हम भारत में हों। भारतीय समाज की वेश-भूषा में परिवर्त्तन आ गया है, भाषा भी उनकी बदल गई है, किन्तु अपने धर्म और संस्कृति के प्रति उनकी आस्था यथावत बनी है।

वहां से शहर में घूमते हुए हम लोग होटल में लौट आये और थोड़ी देर विश्राम करके शाम को कृष्ण मंदिर गये। सड़क से थोड़ी ऊंचाई पर बना यह मंदिर अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक है। उसमें सामने ही ब्रज का एक विशाल दृश्य है, इधर-उधर मूर्तियां हैं। यहां मंदिरों में बैठने के लिए कुर्सियों की व्यवस्था है, पर जूते बाहर उतार

दिये जाते हैं।

यहां भी बड़ा सुन्दर कीर्त्तन हुआ। शंकर दयाल सिंह का तथा मेरा भाषण हुआ। कुछ अन्य लोग बोले। दोनों ही मंदिरों में मेरे पुराने मित्र महातम सिंह और ज्ञान अधीन उपस्थित थे। वे भी बोले। भारत से इतनी दूर भारतवंशियों ने अपने धर्म और संस्कृति की ज्योति को प्रज्ज्वलित रक्खा है, यह देखकर मन गद्‌गद् हो उठा।

उस दिन का अंतिम कार्यक्रम भारतीय राजदूत के यहां रात्रिभोज का था। उसमें शिक्षा मंत्री, विदेश मंत्री, राष्ट्रीय एसेम्बली के अध्यक्ष तथा कुछ अन्य व्यक्ति सम्मिलित हुए। भारतीय राजदूत श्री चोपड़ा तथा उनकी पत्नी ने बड़े प्रेम से अतिथियों का स्वागत किया और बड़े उल्लास से भोजन कराया। हम बता चुके हैं कि वहां की राष्ट्रीय एसेम्बली के अध्यक्ष श्री जगन्नाथ लछमन भारतीय हैं। बढ़िया हिन्दी बोलते है। अत्यन्त प्राणवान और विनोद-प्रिय व्यक्ति हैं। उन्होंने इस भोज को बड़ा सरस और आनन्ददायक बना दिया। अपने जीवन के रोचक प्रसंग सुनाते रहे, जिनमें अन्य सदस्य वृद्धि करते रहे। प्रसन्न वातावरण में भोज रात को बारह बजे तक चलता रहा। उसे मधुर बनाने में चोपड़ा दम्पत्ति का भी विशेष योगदान रहा।

भोज के अंत में श्री चोपड़ा ने अतिथियों का आभार माना। भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल की ओर से शंकर दयाल सिंह ने धन्यवाद दिया। बच्चू प्रसाद सिंह ने भी अपने राजदूत-काल के कुछ अनुभव सुनाये।

अगले दिन अर्थात १३ अप्रैल को हमें वह ऐतिहासिक स्थान दिखाने ले जाया गया, जहां ५ जून १८७३ को पहला जहाज़ शर्त्तबंद मजदूरों को लेकर भारत से आया था। सरमक्का नामक स्थान पर

'लालारूक जहाज़' की स्मृति जितनी कटु है, उतनी ही मधुर भी है। जहाज़ पर आने वाले भारतीयों को कितने कष्ट सहने पड़े और बाद में कितनी यातनाएं भोगनी पड़ीं, उस लोमहर्षक कहानी को कहने वाला आज कोई नहीं बचा है। इतिहास के वे पृष्ठ आज बंद हो चुके हैं और मधुर पृष्ठ खुल गये हैं। यदि भारत के वे सपूत यहां नहीं आये होते तो यहां का इतिहास ही कुछ और होता। उन्हीं के वंशजों ने आज अपने पुरुषार्थ से उस देश का नक्शा बदल दिया है।

उस स्थान पर एक उपयुक्त स्मारक बनाने की बात है। इस समय तो वहां सूरीनाम नदी के किनारे पर एक छोटा-सा स्तंभ है, और एक छोटा-सा विश्राम-स्थल है। परन्तु वहां से पारामारीबो तक के पैंतालीस किलोमीटर के बड़े ही रमणीक मार्ग में प्रवासी भारतीयों ने अपने बहुत ही कलापूर्ण मकान बना रक्खे हैं। शंकर दयाल सिंह की प्रबल इच्छा थी कि ऐसे ही एक घर में हम लोग जायं और वहां के निवासियों से बात करें। फलतः हम लोग बिना पूछे एक लम्बे-चौड़े घर के फाटक में घुस गये और गाड़ी अंदर ले जाकर खड़ी कर दी। हम सब गाड़ी से उतर पड़े। तभी एक भाई बाहर आये। वर्ण श्यामल, बदन उघड़ा, पतलून पहने। शंकर दयाल सिंह ने भोजपुरी में उनका अभिवादन किया। फिर क्या था, वह बड़े तपाक से मिले। उनके चेहरे से पता लग रहा था कि उनका रोम-रोम पुलकित हो रहा है। वह बार-बार कहते थे, "हमारे धनभाग!" उन्होंने बताया कि उनके पिता अवतार शर्त्तबंद मज़दूरों में आये थे। "हम अबतक भारत नहीं जा सके," उन्होंने विषाद के साथ कहा, "पर हमारा भाई शिवमंगल १९७३ में भारत गया था। वहां वह खूब घूमा। हम भारत नहीं गये तो क्या, हमें खुसी है कि आज हमारे घर भारत आ गया। धन भाग, धन भाग!"

तभी शिवमंगल आ गया। उससे हमने पूछा कि भारत में कहां-कहां गया तो उसने कहा, "भारत तो बहुत बड़ा देस है। हम बंबई गये, दिल्ली गये, आगरा गये। और बहुत-सी जगह गये। लेकिन भारत तो इतना बड़ा है कि कितना भी घूमो, कम है।"

रामलखन का मन इतना अभिभूत था कि पूरे शब्द उनके मुंह से नहीं निकल पाते थे। उन्होंने स्वप्न में नहीं सोचा होगा कि उनकी भाषा भोजपुरी बोलने वाला कोई भाई उनके देस से वहां आयेगा। वह बिहार के थे।

उनके घर के बरामदे में एक सोफ़ा और कुछ कुर्सियां पड़ी थीं। हम कई जने थे। वह सपाटे से अंदर गये और कुछ कुर्सियां और ले आये। बात करते हुए एकदम उठकर खड़े हो गये। बोले, "आप लोग कुछ पियें, कुछ खायें।" हमारे पास रस की बोतलें थीं। हमने उन्हें रोकने की कोशिश की, पर वह कहां मानने वाले थे! अंदर जाकर कुछ पेयजल की बोतलें उठा लाये। मेज़ों पर टमाटर, केला आदि का ढेर लगा था। घर क्या था, फार्म था। खूब हरियाली थी। सामने नारियल का पेड़ था। उसपर नारियल लगे थे। माजदा उठकर गईं। उन्होंने एक नारियल तोड़ने को कहा। हमारी कार के ड्राइवर ने एक नारियल तोड़कर उसका पानी पिलाया और अंदर का रबड़ी जैसा गूदा खिलाया। फिर तो एक नारियल मैंने भी तुड़वाया, पानी पिया।

रामलखन घर के पीछे ले गये, जहां खेती हो रही थी, अनार के पेड़ थे, जिन पर अनार लगे थे। उन्हें दिखाते हुए बोले, "हमारे पास कुछ गायें भी हैं। उनसे काफी दूध हो जाता है। खेतों में हम बहुत-सी चीज़ें पैदा करते हैं। उन चीज़ों को बेचते हैं।" बरामदे में

केले के अम्बार लगे थे। हमने पूछा, "क्या ये सारे केले बिक जाते है ?" उन्होंने कहा, "काफ़ी बिक जाते हैं। जो बच जाते हैं, उन्हें काटकर गायों को खिला देते हैं।" संतरा, कटहल आदि की भी पैदावार करते थे।

घर का वातावरण इतना स्निग्ध था कि उठने को मन नहीं करता था। अनिच्छापूर्वक हमने उनसे विदा ली। उनकी आंखें डबडबा आईं। हमें सीने से लगाते हुए वह बस इतना ही कह सके, "फिर आइये। धनभाग !" चलते-चलते उन्होंने नारियलों का एक गुच्छा हमारे साथ रखवा दिया।

पारामारीबो लौटते समय रास्ते भर रामलखन की आत्मीयता हमारे मन पर छायी रही।

वहां से लौटकर हम लोग शहर की एक-दो दुकानों पर गये। उनपर स्थानीय दस्तकारी की कुछ चीज़ें थीं, पर वे इतनी महंगी थीं कि हम विशेष कोई ख़रीदारी नहीं कर सके।

शाम को माता गौरी संस्थान में एक कार्यक्रम था। वहां जाने से पहले हम थोड़ी देर के लिए भारतीय उच्चायोग गये। श्री चोपड़ा से आगे के कार्यक्रम के बारे में चर्चा करके माता गौरी संस्थान पहुंचे। मैं जब सन् १९७२ में सूरीनाम गया था, महातम सिंह मुझे उस भूमि को दिखाने ले गये थे, जिसे एच० आर० ब्रह्म तिवारी ने अपने माता-पिता की स्मृति में सांस्कृतिक, धार्मिक तथा साहित्यक प्रवृत्तियों के लिए दान में दे दिया था। नौ हजार वर्ग मीटर की उस भूमि को दिखाते हुए महातम सिंह ने, 'माता गौरी संस्थान' की स्थापना के संबंध में विस्तार से चर्चा की थी। विगत बीस वर्षों में उस कल्पना

ने साकार रूप धारण कर लिया था। १२ जून १९६८ को उसकी स्थापना हुई थी। उसका विशाल भव्य भवन बन गया था और उसमें संगीत, नृत्य, साहित्य, संस्कृति से संबंधित अनेक प्रवृत्तियों का संचालन भी होने लगा था।

'माता गौरी संस्थान' के उद्देश्यों में पहला उद्देश्य है विभिन्न संस्कृतियों में पारस्परिक सौहार्द स्थापित करना। दूसरे, सांस्कृतिक क्षेत्र में अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ संबंध स्थापित करना। तीसरे, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा सद्भाव विकसित करना।

इस संस्थान की प्रवृत्तियों में पहली है हिन्दी और संस्कृत के वर्ग चलाना तथा विभिन्न परीक्षाओं के लिए सुविधाएं जुटाना। दूसरे, पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन करना। तीसरे, हिन्दी नाटकों का मंचन करना। चौथे, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर सभाओं, गोष्ठियों तथा प्रदर्शनियों इत्यादि की व्यवस्था करना।

संस्थान के अध्यक्ष हमारा स्वागत करें, उससे पहले उन्होंने मंच पर लगे गोस्वामी तुलसीदास के चित्र पर माल्यार्पण करने के लिए शंकर दयाल सिंह से अनुरोध किया और दूसरी ओर लगे महात्मा गांधी के चित्र पर माल्यार्पण करने के लिए मुझसे। माल्यार्पण के पश्चात महातम सिंह ने विस्तार से संस्थान का परिचय दिया और उसकी भावी योजनाएं बताईं। अनन्तर शंकर दयाल सिंह का भाषण हुआ। फिर सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए, जिनमें संगीत और नृत्य की बड़ी सराहना की गयी। अंत में मैं बोला। आभार के पश्चात जलपान की व्यवस्था थी। यहां यह कह देना अतिशयोक्ति-पूर्ण न होगा कि सूरीनाम में हिन्दी का जो प्रचार-प्रसार हुआ है, उसका मुख्य श्रेय

महातम सिंह और उनके साथियों को है। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा, 'महिला विद्यापीठ', प्रयाग तथा 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', प्रयाग की विभिन्न परीक्षाओं के पठन-पाठन तथा परीक्षाओं के लिए देश के विभिन्न भागों में केन्द्र स्थापित करने के लिए उन्होंने अथक साधना की, आज भी कर रहे हैं। उनके कार्य में जो बाधाएं आईं, उनकी कहानी बड़ी कटु है, लेकिन उससे महातम सिंह की निष्ठा में अंतर नहीं आया और आज भी वह उसी लगन और परिश्रम से कार्य कर रहे हैं। पूरे देश में उनकी ख्याति है और लोग उनकी सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

१४ और १५ अप्रैल के दो दिन मुख्यतया भेंट-मुलाकातों में गये। १४ तारीख़ को सवेरे १० बजे सूरीनाम के राष्ट्रपति मि० रोनाल्ड वेनेशियान से उनके दफ्तर में मिले। लम्बे-चौड़े डीलडौल के वह महोदय काफ़ी देर तक वहां की राजनीति और संस्कृति की बात करते रहे। उनका नया दफ्तर तैयार हो रहा था। वर्त्तमान दफ्तर बहुत ही सामान्य था। उनके चारों ओर किसी प्रकार का आडम्बर नहीं था। उन्होंने अपने देश के प्रथम कवर हम लोगों को भेंट में दिये।

वहां से घूमते-घामते थोड़ी देर के लिए भारतीय राजदूत के निवास पर होते हुए राष्ट्रीय एसेम्बली के अध्यक्ष जगन्नाथ लछमन के दफ्तर में गये। हम पहले ही बता चुके हैं कि लछमन बड़े सजीव व्यक्ति हैं। उन्होंने हमें साथ ले जाकर एसेम्बली कक्ष दिखाया। एसेम्बली का सत्र न होने के कारण हम वहां की कार्रवाई नहीं देख सके, पर स्पीकर की सीट तथा सदस्यों के बैठने की व्यवस्था आदि का परिचय मिला। ज्ञान अधीन तथा एसेम्बली के कुछ अन्य सदस्य भी अध्यक्ष के कार्यालय में मिले। श्री लछमन बातों के धनी हैं। अंत

में उन्होंने कहा, "हमने जो गांधीजी की मूर्त्ति लगवाई है, उसे अवश्य देख लीजिये। अब उसको बहुत अच्छी तरह प्रतिष्ठापित कराने की योजना बनाई है।" उनके यहां काफ़ी देर लग गई।

महातम सिंह के निवास-स्थान पर दोपहर का भोज था। वहां जाने से पहले गांधीजी की मूर्त्ति देखी। मूर्ति बढ़िया थी, पर स्थान बड़ा सामान्य था। भोज में पहुंचे। वहां श्री लछमन सपत्नीक उपस्थित थे। भारतीय राजदूत चोपड़ा भी अपनी पत्नी के साथ आये थे। दस-पंद्रह व्यक्ति थे। महातम सिंह के घर पर ही मैं पिछली बार ठहरा था। अब उन्होंने बड़ा सुन्दर नया घर बनवा लिया था। मेरे ठहरने की व्यवस्था उन्होंने अपने साथ इस नये घर में ही की थी, पर बाद में वह व्यवस्था बदल गई। उनकी पत्नी और पुत्री भारती पहले ही मिल चुकी थीं। भारती की दोनों बड़ी प्यारी बेटियां तथा शेष लोगों से अब भेंट हुई। महातम सिंह के पुत्र अब बड़े हो गये हैं, पर उनकी सरलता अब भी पहले जैसी बनी है। महातम सिंह की पत्नी तो विरल महिला हैं, भावना की सजीव मूर्ति।

भोजन करके हम लोग थोड़ी देर के लिए सरोज भटनागर के यहां गये। वहां चाय पीकर शाम को पांच बजे अरविन्द स्कूल पहुंचे, जहां हिन्दी की पढ़ाई होती है। उसमें अस्सी-नब्बे छात्र थे। पता चला कि हिन्दी परीक्षाओं के इस प्रकार के नब्बे केन्द्र चलते हैं। छात्रों ने कुछ कार्यक्रम प्रस्तुत किये। हम लोगों का स्वागत किया गया। हमारे भाषण कराये गये।

सारे दिन व्यस्त रहे। अभी एक कार्यक्रम और बाकी था। वह था भारतीय राजदूत द्वारा संचालित सांस्कृतिक केन्द्र में संगीत, नृत्य, आदि का कार्यक्रम। अरविन्द स्कूल में देर हो गई थी। भागते-भागते

उस अंतिम कार्यक्रम में शरीक हुए। यह सांस्कृतिक विभाग संगीत, नृत्य आदि के प्रशिक्षण की दृष्टि से अच्छा कार्य कर रहा है। संगीत नृत्य, सितार-वादन, तबला-वादन के सुन्दर कार्यक्रम हुए।

एल० मलहो के यहां रात के भोजन की व्यवस्था थी। सांस्कृतिक केन्द्र से सीधे उनके घर गये। मलहो वहां के अत्यन्त धनिक व्यक्ति हैं। बढ़िया दावत दी। बातचीत में काफ़ी देर हो गई। बादल छाये थे। वर्षा हो रही थी।

१५ अप्रैल को दो कार्यक्रम थे। सवेरे ६ बजे शिक्षा तथा संस्कृति के मंत्री कोर पिगोट से उनके कार्यालय में भेंट। वहां गये। श्री पिगोट हमें पहले दिन ही भारतीय उच्चायुक्त के निवास पर आयोजित भोज में मिल चुके थे। बड़े मिलनसार व्यक्ति लगे थे। कार्यालय की भेंट में वह बड़े प्रेम से मिले। शिक्षा के बारे में बताया कि वर्त्तमान स्थिति वहां क्या है और उसके विकास के लिए उनकी योजना क्या है।

वहां से १० बजे उपराष्ट्रपति जूल्स अयोध्या से मिलने गये। वह भारतीय हैं। बढ़िया हिन्दी बोलते हैं। भारत और भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रेमी हैं। उनके कमरे में गांधीजी का चित्र लगा था। उस चित्र के साथ हम सबका ग्रुप फोटो खिंचा। यहां चर्चा में अधिकांश बच्चू प्रसाद सिंह अपने समय की राजनीति के विषय में बात करते रहे। हम लोगों से भी वह बड़ी आत्मीयता से मिले।

वहां से चलकर हमने दो मस्जिदें देखीं। बड़ी भव्य थीं। उनमें एक सुन्नी मस्जिद थी, दूसरी अहमदिया। उनके अधिकारी बंधुओं ने बड़ी मोहब्बत से हमारा स्वागत किया। सुन्नी मस्जिद में हम लोगों के भोजन की व्यवस्था थी।

शाम के विमान से हमें ट्रिनीडाड के लिए प्रस्थान करना था।

सामान हमने सवेरे ही बांध दिया था। मस्जिदें देखकर सीधे होटल आये। सामान हंसराज को सौंपा। निश्चय हुआ कि वह सामान लेकर हवाई अड्डे चले जायेंगे और वहां की खानापूरी करा लेंगे। हम लोग श्री मालरो के यहां भोजन करके हवाई अड्डे पहुंच जायेंगे।

मालरो हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं। पिछली बार जब मैं सूरीनाम आया था, वह मुझसे कई बार मिले थे और मुझे अपने घर बुलाया था। बाद में जब वह दिल्ली आये थे तो मुझसे मिले थे और काफ़ी समय तक मेरे साथ रहे थे। बड़े मधुर स्वभाव के व्यक्ति हैं। भोजन पर उन्होंने कई व्यक्तियों को बुलाया था, जिनमें चोपड़ा-दम्पत्ति भी थे।

भोजन करके हम लोगों ने चोपड़ा-दम्पत्ति तथा अन्य बंधुओं से विदा ली और हवाई अड्डे के लिए रवाना हो गये। सूरीनाम के समय के अनुसार हमारा विमान शाम को साढ़े पांच बजे छूटना था। हम लोग थोड़ा पहले पहुंच गये। वहां की भीड़ और अव्यवस्था को देखकर बड़ा अजीब-सा लगा, पर यह कोई नई बात नहीं थी। संसार के विभिन्न देशों में जहां भारतीय बस्तियां हैं, वहां कमोबेश यही हाल है। हवाई अड्डे के अंदर बीसियों खाने की दूकानें थीं, जिनपर खाद्य सामग्री बिक रही थी और लोग खरीदकर वहीं बैठे खा रहे थे।

हवाई अड्डे पर महातम सिंह और ज्ञान अधीन मिल गये। वे भी सम्मेलन में भाग लेने जा रहे थे। विमान समय पर उड़ा और हम एक घंटे में पोर्ट ऑफ़ स्पेन के हवाई अड्डे पर उतर गये।

४/पोर्ट ऑफ़ स्पेन में

हवाई अड्डे पर जन सम्पर्क समिति के अध्यक्ष तथा कार्यसमिति के सदस्य पैट्रिक एडवर्ड्स, भारत के हाई कमिश्नर चिन्तामणि लक्ष्मण, उनके सहयोगी सुरेश ऋतुपर्ण, सम्मेलन की संयोजिका मंत्री श्रीमती सुमिता ब्रूम्स और कई अन्य व्यक्ति उपस्थित थे। उन्होंने, विशेषकर पैट्रिक एडवर्ड्स ने, हवाई अड्डे की औपचारिकताएं पूरी कराईं। सुमिता ने दूरदर्शन पर अगले दिन प्रसारण के लिए कैमरामैन से कुछ व्यक्तियों के वक्तव्य रिकार्ड कराये। हिन्दी निधि के अध्यक्ष चांका सीताराम तथा सम्मेलन के संयोजक रविजी (रवीन्द्र महाराज) अतिथियों को ठहराने की व्यवस्था में संलग्न थे। उन्होंने मेहमानों के ठहरने का प्रबंध विभिन्न परिवारों में किया था। पोर्ट ऑफ़ स्पेन ट्रिनीडाड एण्ड टुबैगो की राजधानी है और काफ़ी फैला हुआ नगर है। मेहमानें को दूर-दूर बस्तियों में ठहराना और उन्हें काफी दूर सभा-स्थल पर लाना बड़ा कठिन काम था, पर संयोजकों ने उसे बड़ी सूझबूझ तथा कुशलता से किया। उसमें काफ़ी देर हो गई। महातम सिंह का सूटकेस किसी अन्य व्यक्ति के साथ चला गया। उसे खोजने में बहुत समय निकल गया। हमारे प्रतिनिधि-मण्डल के शंकर दयाल सिंह और बच्चू प्रसाद सिंह को चांका सीताराम के यहां ठहराया गया, राजेन्द्र अवस्थी और मुझे वहां के एक साधन-सम्पन्न व्यक्ति अमीर

ए० ईडू के घर और माजदा असद को वहां की स्पीकर के यहां। अन्य प्रतिनिधि भी इसी प्रकार दूर-दूर ठहराये गये। सम्मेलन का स्थान था 'रुद्रनाथ कपिलदेव लर्निंग रिसोर्स सेंटर' (मैकबीन, कूवा), जो पोर्ट आफ़ स्पेन नगर से पचास-साठ किलामीटर दूर था। पंद्रह देशों के लगभग चालीस प्रोफेसर, लेखक, विद्वान तथा हिन्दी-सेवी आये थे। इतने व्यक्तियों को एक साथ ठहराने में खर्च बहुत आता। परिवारों में प्रतिनिधियों को बांट देने से वह खर्च बच गया।

हवाई अड्डे पर ही हमें सूचना दे दी गई थी कि अगले दिन सवेरे सारे प्रतिनिधियों को सम्मेलन के स्थान पर एकत्र होना है। सम्मेलन के अधिकारी कार्यक्रम की जानकारी देंगे।

पैट्रिक एडवर्ड्स हमें अपनी कार से अमीर के निवास-स्थान पर ले गये। अमीर का घर पहाड़ी पर था। वहां जाते-जाते बिजली की रंग-बिरंगी रोशनी से जगमगाता शहर आंखों के आगे घूम गया। रात्रि के अंधकार में नाना प्रकार के वे दृश्य बड़े ही रोमांचकारी लग रहे थे। हमारे प्रतिनिधि-मण्डल के छिन्न-भिन्न हो जाने से मन बड़ा अजीब-सा हो रहा था, लेकिन आतिथेय के घर पहुंच कर और अमीर-दम्पत्ति से मिल कर सारा मानसिक तनाव क्षण भर में दूर हो गया। पैट्रिक हमें छोड़कर चले गये, हम लोग अपने-अपने कमरों में सामान रखकर भोजन की मेज पर पहुंचे। अमीर, उनकी पत्नी जमीला और सेविका लक्ष्मी, घर में बस तीन जने थे। सबके अलग-अलग कमरे थे। मकान बहुत ही कलापूर्ण और आरामदेह था। खाने की मेज़ पर अमीर और उनकी पत्नी का विस्तृत परिचय मिला। दोनों ही चार्टर्ड एकाउंटेंट थे, पर अमीर स्टाक ब्रोकर का काम करते थे और उसी में उन्होंने अच्छी कमाई की थी। नगर के धनिकों में उनकी

गणना होती थी। दोनों ही बड़े शिष्ट थे। पति अल्प-भाषी थे, संयत थे, पत्नी भावुक थीं और खूब बोलती थीं। बच्चे उनके बाहर थे। दोनों अपने-अपने धंधे में लगे रहते थे। घर को लक्ष्मी संभालती थी।

हमें अगले दिन सबेरे जल्दी उठना था, वैसे भी सारा दिन भाग-दौड़ में बीता था, इसलिए हम लोग कुछ खा-पीकर अपने-अपने कमरों में जाकर सो गये।

५/सम्मेलन का पहला दिन और उद्घाटन

रात को अच्छी नींद नहीं आई। शाम से हल्की-हल्की वर्षा हो रही थी, फिर भी गर्मी थी। कमरे में ए० सी० की व्यवस्था थी, पर मैंने उसका उपयोग नहीं किया। मेज का पंखा धीरे-धीरे चलता रहा। सबेरे साढ़े चार बजे उठ गया। खूब आराम से तैयार हुआ। मौसम खुल गया था। अमीर और उनकी पत्नी घूमने चले गये। उनके लौटने पर सबने जलपान किया। अमीर को अपने दफ्तर जाना था। उन्होंने अपने एक मित्र से कह दिया था कि वह हमें अपनी कार से सम्मेलन के भवन में छोड़ दें। मित्र समय पर आ गये और हम उनके साथ रवाना हो गये।

सभा-स्थल वहां से बहुत दूर था, किन्तु वह दूरी अखरी नहीं। शहर का कुछ भाग देख लिया। बीस वर्ष पहले का नगर अब और

भी वैभवशाली हो गया था। विस्तार तो होना ही था। लोगों के घर, सरकारी भवन, बाजार, खेल के मैदान, शिक्षालय, सब शहर की शोभा में चार चांद लगाते थे। सम्मेलन का स्थान शहर से दूर बियाबान स्थान पर था। नगर के विख्यात समाज-सेवी रुद्रनाथ कपिलदेव की स्मृति में उनके नाम पर 'लर्निंग रिसोर्स सेंटर' का विशाल भवन बना दिया गया है। उसके परिसर में एक सभागार है और छोटे-बड़े अनेक कमरे हैं।

सेंटर के चारों ओर ग्रामीण वातावरण है। संभवतः संचालकों की संस्थान को बड़ा रूप देने की योजना है। उसके लिए इतनी जगह शहर में या उसके निकट शायद ही मिल पाती। जो हो, 'सा विद्या विमुक्तये' के अनुसार विद्या का विमुक्त होना जहां अनिवार्य है, वहां उसके लिए उन्मुक्त वातावरण भी अत्यावश्यक है। हम लोग वहां पहुंचे तबतक कई देशों के प्रतिनिधि आ चुके थे। चांका सीताराम और रविजी को तो वहां होना ही था। एकेडेमिक सैशन्स के चेयरमैन प्रो० कैनथ रामचन्द्र भी थे। उनकी विशेष जिम्मेदारी थी। कुछ और भी कर्त्ता-धर्त्ता लोग थे।

प्रतिनिधियों के जमा हो जाने पर कार्यवाही आरंभ हुई। चांका सीताराम ने अतिथियों का स्वागत किया। रविजी ने 'हिन्दी-निधि' का, जिसके तत्वावधान में यह सम्मेलन हो रहा था, परिचय दिया और सम्मेलन का उद्देश्य बताया। प्रो० कैनथ रामचन्द्र ने कहा कि वह गोष्ठियों आदि का विवरण तैयार कर रहे हैं और शीघ्र ही उसकी घोषणा करेंगे। सच यह है कि उस समय तक गोष्ठियों का कोई भी विस्तृत ब्योरा तैयार नहीं था। १६ अप्रैल को आरंभ (उद्घाटन), १७-१८ को तीन-तीन संगोष्ठियां और १६ को समापन, इसकी मोटी

रूपरेखा उनके सामने थी। जितने प्रतिनिधि आये थे, उनका समावेश संगोष्ठियों में करना था। रामचन्द्र ने कहा कि जो निबन्ध तैयार करके लाये हैं, वे उन्हें दे दें। मैं योंही एक निबन्ध 'हिन्दी : ए ग्लोबल फ़िनोमेनन' अंग्रेजी में ले गया था। वह मैंने उन्हें दे दिया। और भी कुछ निबन्ध उनके पास आ गये। प्रत्येक संगोष्ठी का एक-एक अध्यक्ष और वक्ता निश्चित होने थे। उसके लिए रामचन्द्र पर काफ़ी दबाव पड़ा। पहले दिन की तीन संगोष्ठियों के अध्यक्ष हमारे प्रतिनिधि-मण्डल के शंकर दयाल सिंह, बच्चू प्रसाद सिंह और राजेन्द्र अवस्थी चुने गये। रामचन्द्र ने घोषणा की कि अगले दिन की एक संगोष्ठी की अध्यक्षता मैं करूंगा, लेकिन कोई महानुभाव बीच में आ कूदे और उन्होंने मेरी जगह अपना नाम रखवा लिया।

इस प्रारंभिक चर्चा में एक नई कठिनाई उठ खड़ी हुई। सम्मेलन की सम्पूर्ण कार्यवाही अंग्रजी में की जाने वाली थी। हम सबने और हमारे साथ ही अन्य प्रतिनिधियों ने उसका विरोध किया। सम्मेलन हिन्दी के संबंध में, उसका उद्देश्य हिन्दी का व्यापक प्रचार-प्रसार, लेकिन कार्यवाही अंग्रेजी में—यह किसी को भी गवारा नहीं था। सम्मेलन के संचालक और संयोजक अपनी कठिनाई बताते थे, जो हमारे गले नहीं उतरी। उनका कहना था कि हिन्दी के पक्ष में अभी वहां अनुकूल वातावरण नहीं है। अंग्रेजी का बहिष्कार करके हिन्दी को अपना लेने से उसकी कठिनाई बढ़ जायगी। फिर हिन्दी का विशेष चलन न होने के कारण सम्मेलन में उपस्थित होने वाले श्रोताओं के भी कान खड़े हो जायंगे। हमारा तर्क था कि अगर हम इतना डरेंगे तो हिन्दी आवेगी कैसे ? अंग्रेजी का विरोध तो किसी-न-किसी रूप में होगा ही।

हम सबके साथ जब अधिकांश प्रतिनिधि एक स्वर हो गये तो सम्मेलन का अधिकारी वर्ग द्विविधा में पड़ गया। काफ़ी बहस के बाद निश्चय हुआ कि जो प्रतिनिधि अंग्रेजी के साथ हिन्दी का उपयोग करना चाहें, वे कर सकते हैं।

संध्या को साढ़े सात बजे ट्रिनीडाड कन्ट्री क्लब में सम्मेलन का उद्घाटन, भोज और सांस्कृतिक कार्यक्रम था। अमीर और उनकी पत्नी जमीला भी उसमें आमंत्रित थे। वे हमें साथ लेकर ७ बजे वहां पहुंच गये। मेहमानों के साथ-साथ स्थानीय नागरिक भी बड़ी संख्या में बुलाये गये थे। सवा सात बजे तक अधिकांश व्यक्ति आ गये। सात बजकर पच्चीस मिनट पर वहां के राष्ट्रपति श्री नूर हसनाली अपनी पत्नी के साथ आये। उनके आगमन के बाद राष्ट्रगान हुआ, फिर बाहर से आये सम्मेलन के प्रतिनिधियों को एक पंक्ति में खड़ा कर दिया। राष्ट्रपति वहां आये। प्रत्येक प्रतिनिधि का उनसे परिचय कराया गया। अंत में राष्ट्रपति को मंच पर ले जाने से पहले माल्यार्पण किया गया। इस बीच 'चोटी संगीत साज' द्वारा संगीत, नृत्य आदि का संक्षिप्त कार्यक्रम हुआ और भोज की घोषणा की गई। भोजन-कक्ष छोटा था। इसलिए मेजों पर नम्बर लगा दिये गये थे। घोषणा में क्रम से मेजों का उल्लेख किया गया, घोषित मेज के व्यक्ति उठ कर पंक्तिबद्ध भोजन-कक्ष में गये और अपनी-अपनी प्लेट में खाना लेकर सभा-भवन में अपने-अपने स्थान पर आकर भोजन करने लगे। बैरों ने कोक तथा शराब लाकर दे दी। भोजन में परांठे, बैंगन-आलू की सब्ज़ी, चावल, सलाद और अंत में आइसक्रीम तथा गुलाब जामुन दिये गये। सामिष लोगों के लिए मांस था। राष्ट्रपति की मेज़ पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़कर शेष जहां जिसका जी चाहा, बैठ

गया।

पौने नौ बजे सम्मेलन के उद्घाटन की कार्यवाही आरंभ हुई। सबसे पहले सम्मेलन के संयोजक रविजी का भाषण हुआ। उन्होंने सबका स्वागत किया और संक्षेप में सम्मेलन के उद्देश्य पर रोशनी डाली। उसके बाद कार्यक्रम-निदेशक रेवरेण्ड हेरल्ड सीटहल का विशेष भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने ट्रिनीडाड की धार्मिक स्थिति का विशद वर्णन किया। भाषण अच्छा था। हिन्दी निधि के अध्यक्ष चांका सीताराम ने विशिष्ट सेवाओं के लिए पुरस्कार प्रदान किये। सबसे पहला पुरस्कार 'भारतीय विद्या संस्थान' को दिया गया। उस पुरस्कार को लेने के लिए संस्थान के संचालक प्रो० हरिशंकर आदेश आने वाले थे, लेकिन कैनेडा में कुछ पारिवारिक असुविधाओं के कारण वह नहीं आ सके। इस संस्थान ने हिन्दी, भारतीय संगीत और नृत्य आदि के प्रचार-प्रसार के लिए जो देशव्यापी प्रयत्न किया था और अब भी कर रहा था, वह मैं अपने पिछले प्रवास में भली प्रकार देख चुका था। मैं ठहरा ही आदेश के साथ था। यह पुरस्कार संस्थान को रजत जयंती के उपलक्ष्य में दिया गया था। दूसरा पुरस्कार कमालुद्दीन मोहम्मद को रेडियो द्वारा हिन्दी के कार्यक्रम संचालित करने में विशेष भूमिका अदा करने के लिए दिया गया। तीसरा पुरस्कार प्रो० भूदेव शर्मा को दिया गया, जिन्होंने 'हिन्दी निधि' की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

इसके पश्चात राष्ट्रपति का भाषण हुआ। उसमें सम्मेलन के आयोजन की सराहना की और उसमें सरकार की ओर से पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया गया। अनन्तर राष्ट्रपति और उनकी पत्नी को पुरस्कृत किया गया। सम्मेलन की संयोजिका-सचिव सुमिता ब्रूम्स

ने आभार व्यक्त किया।

सांस्कृतिक कार्यक्रम में फ्रेंच कैरेबियन प्रतिनिधियों ने कुछ चीजें प्रस्तुत कीं, सन्द्रा शुकदेव और उनके ग्रुप ने नृत्य किया तथा 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' के कई कलाकारों ने संगीत, नृत्य, सितार और तबला वादन के कलापूर्ण कार्यक्रम दिखाये।

६/हिन्दी निधि

इस अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन का आयोजन 'हिन्दी निधि' के तत्वावधान में किया गया था। 'हिन्दी निधि' की स्थापना वहां के कुछ व्यक्तियों ने मिलकर २६ अप्रैल १९८६ को की थी। उसके संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है, "हिन्दी विश्व की एक प्रभावशाली भाषा है। विश्व की भाषाओं में उसका तीसरा स्थान है। ट्रिनीडाड और टुबैगो में हिन्दी की दीर्घकालीन परम्परा है, इसलिए नहीं कि धर्माचरण के लिए उसका उपयोग होता है, बल्कि कला, रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा तथा सामाजिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन में भी वह काम में आती है। इस समय हिन्दी का समाज में स्वस्थ नवजागरण हो रहा है, अतः आवश्यक है कि एक संस्थान की, इस संविधान में उल्लिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, स्थापना की जाये। इसलिए १८ अप्रैल १९८६ को आयोजित एक विशेष सभा में यह संविधान स्वीकार किया गया और सिफारिश की गई कि २६

अप्रैल १९८६ को आयोजित एक राष्ट्रीय हिन्दी परिषद में इसे औपचारिक रूप में स्वीकृति प्रदान की जाये। तदनुसार यह संविधान स्वीकार किया गया।"

संस्थान का नाम 'हिन्दी निधि' अथवा 'हिन्दी फाउण्डेशन ऑफ़ ट्रिनीडाड एण्ड टुबैगो' रक्खा गया। उसका उद्देश्य निर्धारित किया गया : ट्रिनीडाड और टुबैगो में हिन्दी भाषा का अध्ययन, अभ्यास, शिक्षण तथा विकास करना।

'निधि' की प्रवृत्तियों में कुछ ये रक्खी गईं :

१. राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी पढ़ाना और उसके शिक्षण को प्रोत्साहित करना।
२. हिन्दी भाषा की पढ़ाई के लिए स्कूल, वर्ग और अन्य सुविधाएं जुटाना, प्रोत्साहित करना और उनके संचालन में सुविधा प्रदान करना।
३. प्रारंभिक, माध्यमिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी भाषा के पठन-पाठन के लिए पाठ्यक्रम तैयार करना, निरीक्षण करना और विकसित करना।
४. हिन्दी भाषा की पढ़ाई और सामान्यतः शिक्षा के विकास के लिए पुस्तकें, समाचार-पत्र आदि प्रकाशित करना तथा श्रव्य और दृश्य सामग्री तैयार करवाना।
५. हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए परिषदें, सभाएं, संगोष्ठियां और भाषण आयोजित करना।
६. हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए पुस्तकालय तथा वाचनालय स्थापित और संचालित करना।

७. हिन्दी भाषा और हिन्दी के ज्ञान के लिए उपाधियां, प्रमाण-पत्र आदि प्रदान करने के लिए परीक्षा कौंसिलें स्थापित करना।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी प्रवृत्तियां रक्खी गई हैं, जिनमें तीन प्रमुख हैं :

८. संस्थान के उद्देश्यों की पूर्ति में विशिष्ट योगदान के लिए संस्थाओं तथा व्यक्तियों को विशेष प्रमाण-पत्र देना।

९. ट्रिनीडाड और टुबैगो गणराज्य में सभी नागरिकों के बीच हिन्दी भाषा के प्रति पारस्परिक सौहार्द और समझ को बढ़ावा देना।

१०. हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सहायता की भूमिका बनाना।

संस्थान का विधिवत संविधान है, जिसमें पदाधिकारियों तथा उनकी नियुक्ति और सभाओं की नियमावली आदि है। चौदह उसके संस्थापक सदस्य हैं।

उसकी वर्त्तमान उपलब्धियों में उल्लेखनीय हैं :

१. प्रारंभिक हिन्दी के छात्रों के लिए हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों का मुद्रण।

२. विभिन्न स्तरों पर ट्रिनीडाड के उत्तर, मध्य और दक्षिण में हिन्दी के वर्गों का संचालन।

३. विश्व की और देश की विभूतियों के विषय में व्याख्यानों का आयोजन।

४. भारत में हिन्दी के शिक्षण के लिए छात्रवृत्तियां तथा अन्य सुविधाएं प्रदान करना।

५. सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा प्रतियोगिताओं के आयोजन करना।

संस्थान की भावी योजनाओं में कुछ ये हैं :

१. सारे सेकिण्डरी स्कूलों में स्वैच्छिक विषय के रूप में हिन्दी की पढ़ाई।

२. पत्राचार द्वारा हिन्दी का पठन-पाठन।

३. दूरदर्शन पर क्विज़ प्रतियोगिताओं की व्यवस्था।

४. हिन्दी के शिक्षण के लिए रेडियो तथा दूरदर्शन पर कार्यक्रम।

इन सबका इतने विस्तार से उल्लेख हमने इसलिए किया है कि भारतीय पाठकों को पता चले कि हमारे देश से हज़ारों मील दूर प्रवासी भारतीय अपने पूर्वजों के देश की भाषा हिन्दी के लिए कितना अनुराग रखते हैं और उसके लिए कितना कार्य करना चाहते हैं। इससे हम कुछ प्रेरणा ले सकें तो भारत में राष्ट्रभाषा का उलझा प्रश्न सहज ही हल हो सकता है।

यह स्थिति उस देश में है, जो भारतीय-बहुल होते हुए भी जहां भाषा को लेकर अनेक बाधाएं हैं। हम ऊपर बता चुके हैं, इन्हीं कैरेबियाई देशों में सूरीनाम में हिन्दी का चलन कहीं अधिक है। मैंने अपनी पिछली यात्रा में जितने भाषण सूरीनाम में दिये थे, सब हिन्दी में दिये थे, जबकि गयाना और ट्रिनीडाड में हिन्दी और अंग्रेज़ी, दोनों का प्रयोग करना पड़ा था।

७/संगोष्ठियां

१६ अप्रैल को सम्मेलन का विधिवत उद्घाटन होने के बाद उसकी संगोष्ठियां अगले दिन से चालू हुईं, लेकिन उस दिन दोपहर तक का समय एक विशेष अधिवेशन के रूप में व्यवहृत हुआ। ट्रिनीडाड एण्ड टुबैगो के प्रधानमंत्री श्री पैट्रिक मैनिंग का आगमन हुआ। वह संस्थान के बरामदे में बिना किसी औपचारिकता के आकर बैठ गये। न उनके साथ अंग-रक्षक थे, न कोई सैनिक। जो चाहे सो उनसे मिल सकता था। मैंने उन्हें एक फोल्डर भेंट किया, जिसमें चन्दन की पतली परत पर डांडी कूच का गांधीजी का चित्र छपा था और उसके सामने उनका एक बोध-वचन दिया हुआ था। प्रधान मंत्री ने उसे बड़े ध्यान से देखा और अपने पास रख लिया। उन्होंने हिन्दी की पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया।

इसके पश्चात प्रधान मंत्री को सभागार में ले जाया गया। उस आयोजन के अध्यक्ष रविजी के प्रारंभिक वक्तव्य के बाद भारत के उपराष्ट्रपति डा० शंकर दयाल शर्मा का संदेश बच्चू प्रसाद सिंह ने पढ़कर सुनाया। कुछ प्रमुख विदेशी प्रतिनिधियों ने संक्षेप में अपने उद्गार प्रकट किये। भारत के हाई कमिश्नर प्रो० चिन्तामणि लक्ष्मण ने सारगर्भित भाषण दिया। सम्मेलन के अध्यक्ष चांका सीताराम बोले। श्रीमती औका श्रीपाल ने उन दो स्कूलों को प्रतीक भेंट किये, जिन्होंने अपने यहां हिन्दी की विशेष सेवा की थी। ये स्कूल थे 'होली फेथ

कन्वेंट' और 'कूवा सेकिण्डरी स्कूल'। डा० भूदेव शर्मा ने 'विश्व विवेक' नामक एक पत्रिका प्रकाशित की थी। उसका लोकार्पण किया गया। पत्रिका की एक प्रति बाद में हमें भेंट की गई।

प्रधान मंत्री से एक बालिका मारिया एडवर्ड्स का परिचय कराया गया। वह हिन्दी की विद्यार्थी थी और उसने हिन्दी की एक कविता का पाठ किया था।

प्रधान मंत्री पैट्रिक मैनिंग का भाषण हुआ। उन्होंने हिन्दी के कार्य को प्रोत्साहित करने का आश्वासन दिया और उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की। भाषण में हार्दिकता थी। इसके पश्चात उन्हें दो प्रतीक भेंट किये गए। एक वहां के स्कूल के हिन्दी विद्यार्थियों की ओर से था, दूसरा सम्मेलन के अध्यक्ष चांका सीताराम की ओर से।

'हिन्दी निधि' की प्रचार-समिति के अध्यक्ष पैट्रिक एडवर्ड्स के आभार-ज्ञापन के साथ यह समारोह समाप्त हुआ।

आज की पहली संगोष्ठी १०.४५ से १२ बजे तक चली। अध्यक्ष थे श्री शंकर दयाल सिंह। विषय था : 'हिन्दी—नेशनल एण्ड इंटरनेशनल' (हिन्दी : राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय)।

इस पहले सत्र में पहला वक्ता मैं था। मेरे निबंध का विषय था: 'हिन्दी : ए ग्लोबल फिनोमेनन' (विश्व परिप्रेक्ष्य में हिन्दी)। मेरा भाषण अंग्रेजी में टंकित था, किन्तु मैंने उसे पढ़ा नहीं। शुरू में मैं हिन्दी में बोला, फिर अंग्रजी में। मेरे वक्तव्य का सार यह था कि हिन्दी अब विश्व मंच पर स्थापित हो गई है। वह प्रेम की भाषा है, संतों की भाषा है। वह सामासिक संस्कृति की संवाहिका है। अतः संसार में शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से उसकी अनंत संभावनाएं

हैं।

मेरे बाद दो अन्य व्यक्ति बोले। उनमें पहले थे डा० क्रिस्टोफर किंग, जिनका विषय था : 'द प्रिंटेड मिरर, पब्लिशिंग इन नाइन्टीन्थ सेंच्युअरी ऐण्ड अर्ली ट्वन्टियेथ सेंच्युअरी—उत्तर प्रदेश)। उन्होंने उत्तर प्रदेश में हिन्दी के प्रकाशनों के मुद्रण तथा प्रकाशन पर प्रकाश डाला। दूसरे वक्ता थे प्रो० एम० जी० चतुर्वेदी, जिनका विषय था : 'एमर्जिंग इंटरनेशनल लैंग्वेज'। उन्होंने कहा कि हिन्दी का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है और उसका विश्व की भाषाओं में विशेष महत्व है।

भोजन की व्यवस्था वहीं पर थी। खाना खाने के उपरान्त दूसरी संगोष्ठी १ बजे से २ बजे तक चली। उसके अध्यक्ष थे बच्चू प्रसाद सिंह। विषय था : 'दी स्ट्रगिल्स ऑफ़ एण्ड फौर ए नेशनल लैंग्वेज'। उसके तीन वक्ता थे—प्रो० लोथार लुत्से, प्रो० मारिओला ऑफ़्रेडी और डा० इवा इराडी। लोथार लुत्से बड़े रोचक ढंग से बोलते हैं। उनके भाषण का विषय था . 'टू फ़ेसेज़ ऑफ़ ए लैंग्वेज'। मारिओला ऑफ़्रेडी ने 'हिन्दी एज़ दी लैंग्वेज ऑफ़ सोशल ऐण्ड पालीटिकल' विषय पर अपने विचार प्रकट किये और इवा इराडी ने 'द ग्रोइंग रोल ऑफ़ हिन्दी इन इंडियन लैंग्वेजज़' विषय पर।

तीसरी संगोष्ठी राजेन्द्र अवस्थी की अध्यक्षता में हुई। विषय था : 'लैंग्वेज रेज़िस्टेंस ऐण्ड डीकालोनाइज़ेशन'। इसमें जॉन ला ग्वेरे, महातम सिंह और ज्ञान अधीन बोले।

१८ अप्रैल को भी तीन संगोष्ठियां हुईं। पहली संगोष्ठी का विषय था : 'हिन्दी, द मीडिया, द ओरल ट्रेडीशन्स'। इसके अध्यक्ष थे ब्रिंसले समारू और वक्ता थे कमालुद्दीन, भूदेव शर्मा और एम० के० गौतम।

दूसरी गोष्ठी का विषय था : 'लैंग्वेज गोइंग बियोंड लैंग्वेज।' अध्यक्ष थे एम० के० गौतम और वक्ता थे : माजदा असद, डा० मोहनलाल सार, हरीश नवल, मारिया और ब्रिस्की। तीसरी गोष्ठी का विषय था: 'हिन्दी टीचिंग ऐण्ड लर्निंग', अध्यक्ष थे लोथार लुत्से और वक्ता थे सत्येन्द्र श्रीवास्तव, एस० एम० इक़बाल, मारिया निगेसी तथा सुरेन्द्र गंभीर।

इस संगोष्ठी में सबसे अधिक सारगर्भित, ज्ञानवर्द्धक और प्रेरणादायक भाषण कमालुद्दीन का था। वह कई वर्ष तक रेडियो से सक्रिय रूप में सम्पृक्त रहे थे और उनके अनुभव अत्यन्त दिशा-दर्शक थे। वह कुछ वर्ष मंत्री भी रहे थे।

इसके बाद एक विशेष भाषण रक्खा गया था वासुदेव पाण्डे का। वह बहुत ही सुन्दर था। श्री पाण्डे विपक्ष के नेता थे।

१६ अप्रैल को सम्मेलन का समापन किया गया। उसमें विदेश मंत्री रेल्फ़ महाराज आये। इस समारोह के अध्यक्ष थे 'हिन्दी निधि' की कार्य समिति के सदस्य और जनसम्पर्क समिति के अध्यक्ष पैट्रिक एडवर्ड्स। उनके भाषण में विनम्रता और हार्दिकता थी।

उनके बाद ओक श्रीपाल बोले, जो हाउस ऑफ़ रिप्रेजेंटेटिव्ज़ के अध्यक्ष और 'हिन्दी निधि' की कार्यसमिति के सदस्य थे।

प्रो० कैनथ रामचन्द्र ने संगोष्ठियों के भाषणों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। उससे पहले बाहर से आये विद्वानों की ओर से प्रो० मारिया और के० ब्रिस्की बोले।

तत्पश्चात विभिन्न देशों से आये विद्वानों को कलापूर्ण प्रतीक भेंट किये गए।

प्रमुख वक्ता के रूप में विदेश मंत्री बोले और समापन-भाषण

रविजी ने दिया। अंत में कुछ लोग बोले, जिनमें एक मैं भी था। मेरा सुझाव था कि वहां एक पुस्तकालय-आंदोलन चलाया जाय और अच्छी पुस्तकों के स्थान-स्थान पर पुस्तकालय खोले जायं। उस अभियान में मैंने अपने और 'सस्ता साहित्य मण्डल' के सहयोग का आश्वासन दिया। इस अवसर पर हिन्दी की पुस्तकों आदि की एक प्रदर्शनी भी की गई थी, जो बहुत ही साधारण थी। उसका उद्‍घाटन प्रधान मंत्री ने किया था।

सम्मेलन में तीन प्रस्ताव पारित किये गये, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रसंघ से हिन्दी को अन्य भाषाओं में शामिल करने का आह्वान था।

इस सम्मेलन की मर्यादा होते हुए भी उससे तीन बड़े लाभ हुए। पहला तो यह कि लगभग पंद्रह देशों के चालीस हिन्दी-सेवी उस छोटे से देश में एकत्र हुए और चार दिन तक वहां हिन्दी के संबंध में चर्चाएं कीं, जो भविष्य के लिए निश्चय ही हितकर होगा। दूसरी, वहां की सरकार पर हिन्दी के महत्व की छाप पड़ी और तीसरा लाभ यह हुआ कि वहां के हिन्दी-प्रेमियों का उत्साह बढ़ा। हमारी मान्यता है कि यदि यह सम्मेलन अधिक तैयारी के साथ सुनियोजित ढंग पर किया गया होता तो उसका असर और भी गहरा होता।

सम्मेलन का शुभारंभ १६ अप्रैल को राष्ट्रपति के भोज से हुआ था। वह क्रम निरंतर चलता रहा। १८ को 'हिन्दी निधि' के अध्यक्ष चांका सीताराम ने अपने विशाल भवन में, १९ को भारतीय उच्चायुक्त चिन्तामणि लक्ष्मण ने और २० को भारतीय उच्चायोग के द्वितीय सचिव सुरेश ऋतुपर्ण ने अपने-अपने निवास पर रात्रिभोज दिये। चांका सीताराम के यहां संगीत का अत्यन्त मधुर कार्यक्रम था।

८/सागर-तट पर

पिछली बार जब मैं ट्रिनीडाड गया था, आदेश मुझे हवाई जहाज से टुबैगो ले गये थे। प्रकृति का टुबैगो एक अद्‌भुत वरदान है। कैरेबियन सागर में बसे उस छोटे-से द्वीप की विलक्षणता को देखने के लिए दूर-दूर से प्रकृति-प्रेमी पर्यटक आते हैं। हवाई अड्डे से नगर तक का सौंदर्य बड़ा ही मोहक है। उसे देखते और सराहते हुए हम छोटे-से बंदरगाह पर पहुंचते हैं, जहां मोटर-बोट तैयार खड़ी रहती हैं। उनमें बैठकर यात्री समुद्र में जाते हैं। इन नावों में बीच में शीशे लगे रहते हैं, जिनसे समुद्र की गहराई में अठखेलियां करतीं रंग-बिरंगी, छोटी-बड़ी मछलियां देखी जा सकती हैं। उन्हें देखकर लगता है कि मछलियों का अपना संसार है।

नाव आगे बढ़ती जाती है और पर्यटक आश्चर्यचकित होकर मत्स्य-क्रीड़ाओं को देख-देख कर अघाते नहीं हैं। तभी नाव समुद्र की अनंत जलराशि के बीच रुक जाती है और नाविक संकेत करता है कि नाव से उतर जाइये। सुनते ही मन धक्-से रह जाता है! नहीं, समुद्र में हमें डूबना नहीं है। नाविक समझाता है, "साहब, आपकी जान हमें भी बड़ी प्यारी है। पर आप नाव से उतरिये तो सही, सारा रहस्य आपकी समझ में आ जायेगा।"

नाविक के विवेक पर भरोसा करके पर्यटक कॉस्ट्यूम पहनते हैं, मुखौटा हाथ में लेते हैं और डरते-डरते नाव से उतर जाते हैं।

पर यह क्या ? वहां तो कमर और गले तक पानी है। नाविक बताता है, "श्रीमानजी, यह यहां का एक आश्चर्य है। यहां समुद्र में मीठे पानी का एक तालाब है। आप मजे में, निडर होकर, स्नान कीजिये और मुखौटा लगाकर पानी के भीतर मछलियों के घर देखिये।"

हमने वही किया। मछलियों के ऐसे-ऐसे कलापूर्ण घर देखे कि हैरान रह गये। उनकी कारीगरी विलक्षण थी। मछलियां निर्द्वन्द्व भाव से उन घरों में आ-जा रही थीं। उनकी चुहल देखते ही बनती थी। उनका प्रेमालाप देखकर मन जहां आनन्दित होता था, वहां उनका संघर्ष देखकर मन हैरान भी होता था। आखिर वे भी तो जीवधारी प्राणी हैं। उनकी अपनी आशाएं-आकांक्षाएं हैं, उनके अपने सुख-दुःख हैं।

हमें शाम के विमान से लौटना था, पर उन सारे करिश्मों में ऐसे उलझ गये कि समय का ध्यान ही न रहा। नाविक ने याद दिलाई तो हमने उसकी बात अनसुनी कर दी। फलतः विमान चूक गया। आदेश हंस रहे थे। कह रहे थे, "भाईसाहब, मैं जानता था। यही होने वाला है। पर कोई बात नहीं है। कुछ समय बाद एक और जहाज़ है, उससे चले चलेंगे। पर अभी तो आपको यहां की कई दर्शनीय चीज़ें देखनी हैं।"

बाहर आने को मन नहीं कर रहा था, पर आये और घूमने निकल पड़े। अब याद नहीं आता कि वहां क्या-क्या देखा, पर वहां की छोटी-सी आकर्षक बस्ती अब भी याद है। आदेश कवि हैं, संगीतज्ञ हैं, कलाविद हैं। उन्होंने उस यात्रा की स्मृति को चिर स्थायी बना दिया।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि हम उस आनंद को एक बार फिर दोहराते,

लेकिन हमारे पास समय का अभाव था। आने-जाने में तो मुश्किल से एक-डेढ़ घंटा लगता; लेकिन मत्स्य-क्रीड़ा को देखने और जल-क्रीड़ा का आनंद लेने में पूरा दिन लग जाता। फिर जहाज़ का समय भी हमारे लिए अनुकूल नहीं था।

पर सम्मेलन के संयोजकों ने मेरी इच्छा आंशिक रूप में १६अप्रैल को पूर्ण कर दी। वे पहाड़ के ऊंचे-नीचे रास्ते से, वन की हरियाली के बीच होकर सागर-तट के एक मनोहारी विख्यात स्थल पर ले गये। रास्ते में एक जगह पर रुके। वह स्थान ऊंचाई पर था। वहां से सामने निचाई पर समुद्र की अनन्त जलराशि हिलोरें ले रही थी।

उस स्थान पर एक नीग्रो आशु-संगीतज्ञ गिटार पर आशु कविताएं गा-गाकर सुना रहा था और पर्यटकों से पैसे की याचना कर रहा था। कुछ फेरीवालों की दुकानें थीं। उन सबको देखते हुए हम आगे बढ़े और अपने गंतव्य पर पहुंचे। सागर-तट पर कुछ इमारतें बनी थीं, जिनमें स्थानीय वस्तुओं की भी कुछ दुकानें थीं। कुछ फेरीवाले नारियल की बनी चीज़ें हाथ में लेकर पर्यटकों के बीच घूम रहे थे। काफ़ी फैला हुआ तट था। उसकी बालू में बच्चे, बड़े, महिलाएं, बड़ी संख्या में घूम रहे थे, कुछ स्नान कर रहे थे, कुछ सागर की लहरों का आनंद ले रहे थे।

सम्मेलन के सारे प्रतिनिधि वहां नहीं गये थे, पर जो गये थे, वे वहां के वातावरण में खो-से गये। जर्मनी के लोथार लुत्से और पोलैण्ड के सांस्कृतिक सचिव ब्रेस्की अपने लम्बे-चौड़े शरीर पर मात्र जांघिया पहने हनुमान बनकर सबके सामने आ खड़े हुए। लोथार लुत्से ने तो एक प्रकार से हनुमान की आकृति बना ली। उन्हें उस रूप में देखकर हम लोग मारे हंसी के लोट-पोट हो गये। लुत्से भी

मुस्कराते हुए हमारी ओर ताक रहे थे।

समुद्र में काफ़ी आगे तक गहरा पानी नहीं था। अतः स्नान करने वाले बेधड़क लहरों के साथ आंख-मिचौनी कर रहे थे। मैं घर से स्नान करके चला था। अतः स्नान तो नहीं किया, किन्तु धोती ऊंची करके घुटनों तक पानी में चक्कर लगाता रहा और लहरों के साथ खेलता रहा। किनारे की बालू पर घूमता रहा।

मैंने कई स्थानों पर लिखा है कि मेरे जीवन में पर्वत और सागर विशेष स्थान रखते हैं। पर्वत मुझे जीवन की ऊंचाई का बोध कराते हैं, सागर गहराई का। आखिर ऊंचाई और गहराई से ही मानव-जीवन का मूल्य स्थापित होता है।

सागर-तट पर घूमते हुए न जाने क्या-क्या विचार मन में आते रहे। निस्संदेह वहां की दृश्यावली बड़ी मनोहारी थी।

सम्मेलन के अध्यक्ष चांका सीताराम हमारे साथ गये थे। वह अपने साथ भोजन ले गये थे। हम सबने वहीं सागर-तट पर खाना खाया और उमंग से भरे अपने स्थान पर लौटे।

८/आदेश-आश्रम में

प्रो० हरिशंकर आदेश के बिना मैं ट्रिनीडाड की कल्पना भी नहीं कर सकता था। पोर्ट ऑफ़ स्पेन के हवाई अड्डे पर जब वह मुझे

दिखाई नहीं दिये तो मुझे विस्मय हुआ। मैंने दिल्ली से ही उन्हें पत्र लिख दिया था कि मैं अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन में भाग लेने ट्रिनीडाड जा रहा हूं। वह कई वर्ष से अब कैनेडा के टौरेंटो नगर में रहते हैं। वहीं उनका अपना घर है और वहीं उनका परिवार रहता है। कुछ ही दिन पहले वह और उनकी पत्नी निर्मला दिल्ली आये थे, उनसे फोन पर बात हुई, किन्तु वह इतने व्यस्त रहे कि उनसे मिलना नहीं हो सका। फिर उन्हें अचानक रवाना हो जाना पड़ा। उस समय तक सम्मेलन की चर्चा भी नहीं थी।

पोर्ट ऑफ़ स्पेन के हवाई अड्डे पर उनके एक साथी मोहन श्यामलाल मिले। मेरे पिछले प्रवास में वह आदेश-आश्रम में मुझसे मिलते रहे थे। उन्होंने मुझे पहचान लिया और पास आकर परिचय दिया। आदेश के विषय में पूछने पर उन्होंने बताया कि आदेश कुछ घरेलू हैरानी के कारण नहीं आ सकेंगे, लेकिन उन्होंने टौरेंटो से सूचना दी है कि वह मुझे आश्रम में ले जाकर मेरा अभिनंदन अवश्य करें। पहले दिन से ही वह पीछे पड़ गये कि मैं कोई दिन और समय निश्चित कर दूं, पर सम्मेलन का कार्यक्रम इतना घिरा था और सम्मेलन का स्थान इतनी दूर था कि समय निकालना कठिन था। अतः निश्चय हुआ कि २० अप्रैल को वहां चलेंगे।

मोहन श्यामलाल सम्मेलन में बराबर आ रहे थे। उन्होंने एक संगोष्ठी में निबन्ध-पाठ भी किया था। १९ अप्रैल को उन्होंने अगले दिन का कार्यक्रम तय कर लिया। यह भी तय हुआ कि वह सबेरे ९ बजे अमीर के घर आ जायंगे और मुझे साथ ले जायेंगे।

वह नियत समय पर आये। उनका लड़का भी आया। हम लोग आश्रम पहुंचे। वह स्थान मेरा परिचित था, यद्यपि आदेश रहते दूसरी

जगह थे और मैं उनके घर पर ठहरा था। हम लोग आश्रम बराबर जाते रहते थे। सारे कार्यक्रम भी वहीं पर हुए थे।

आश्रम को देखकर पुरानी सुखद स्मृतियां ताज़ी हो गईं। आश्रम के अनेक अधिकारी वहां उपस्थित थे, अध्यापक-अध्यापिकाएं और छात्र भी। पचास-साठ व्यक्ति थे। आश्रम के अध्यक्ष ने मेरा स्वागत किया। फिर वहां के अधिकारी रुद्रनाथ महाराज ने आश्रम की स्थापना से अबतक के विकास का परिचय दिया। आज भारतीय विद्या संस्थान द्वारा बीसियों स्थानों पर हिन्दी के वर्ग चलते हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास आदि की परीक्षाओं की व्यवस्था की जाती है। पिछली बार कई जगहों पर इन परीक्षाओं के प्रमाण-पत्र मुझसे दिलवाये गये थे। कुछ साल पहले जब दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने पाठ्य पुस्तकें बार-बार मांग करने पर भी नहीं भेजी थीं तो आदेश ने मुझे लिखा था और मेरे आग्रह तथा ज़िम्मेदारी पर उन्होंने पुस्तकें भेज दी थीं।

हिन्दी के वर्गों के साथ-साथ संस्थान संगीत और नृत्य के भी वर्ग चलाता है। महत्व की बात यह है कि आदेश ने इसके लिए भारत से किसी को नहीं बुलाया, वहीं के भाइयों और बहनों को तैयार करवाया है।

संस्थान की ओर से 'ज्योति' नामक एक पत्रिका भी हिन्दी में निकलती है। मेरे विगत प्रवास के अवसर पर इस पत्रिका ने 'यशपाल जैन' अंक प्रकाशित किया था। इस बार संस्थान के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में 'रजत जयंती' विशेषांक निकाला था। उसके लिए संदेश भेजने के संबंध में उन्होंने मुझे भारत लिखा था। मैंने जो संदेश भेजा था, वह विशेषांक में छपा था। उस अंक की एक प्रति मुझे

भेंट की गई।

हम पहले ही बता चुके हैं कि आदेश अच्छे कवि हैं। उनकी काव्यकृति 'अनुराग' की पाण्डुलिपि मैंने पिछले प्रवास के समय देखी थी और उसकी एक टंकित प्रति मैं अपने साथ ले आया था। इस कृति को इस बीच दिल्ली के नेशनल पब्लिशिंग हाउस ने प्रकाशित कर दिया था। डिमाई आकार के ३१६ पृष्ठ के इस प्रबंध काव्य में कवि ने महाभारत के विख्यात आख्यान, गंगा और शान्तनु के अनुराग को, चित्रित किया है। अपनी विस्तृत सम्मति में मैंने लिखा था, "सम्पूर्ण कृति प्रसाद-गुण से युक्त है। उसे पढ़कर जहां आनंद की अनुभूति होती है, वहां जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रेरणा भी मिलती है।" उसकी एक प्रति मुझे समर्पित की गई। उसके आकर्षक आवरण, सुन्दर मुद्रण और बढ़िया कागज को देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ।

रुद्रनाथ महाराज के भावपूर्ण उद्‌गार के बाद संस्थान के छात्रों और छात्राओं ने संगीत और नृत्य के कुछ कार्यक्रम प्रस्तुत किये। मोहन श्यामलाल स्वयं अच्छे संगीतज्ञ हैं और उनके पुत्र तथा पुत्रियां भी उस क्षेत्र में विशेष योग्यता रखते हैं। और भी बहनों ने कई गीत सुनाये। उनके रचयिता 'आदेश' थे।

यह कार्यक्रम आरंभ हुआ ही था कि सूरीनाम के महातम सिंह तथा 'पैनसिलवानिया विश्वविद्यालय' के प्रोफेसर सुरेन्द्र गंभीर आ गये। उनके भाषण हुए। अंत में मैं बोला। 'आदेश' की अनुपस्थिति मुझे बराबर अखरती रही, किन्तु उनके आश्रमवासियों ने उस अभाव की अपनी आत्मीयता से आंशिक पूर्ति कर दी। हम लोगों के भोजन की व्यवस्था वहीं की गई थी। बड़े आनंद से हम सबने उस प्रीतिभोज

में भाग लिया।

आश्रम में कुछ व्यक्ति मेरे पुराने परिचित थे। वे आकर मुझसे मिले और हम लोग पुरानी बातों का स्मरण करके अभिभूत हो उठे। उनमें से एक बहन अपने दिल्ली-प्रवास में मुझसे मिलने आई थीं और आश्रम के कुमार सत्यकेतु तो अपने दिल्ली के अध्ययन-काल में और बाद में जब-जब दिल्ली आये थे, मुझसे मिलते और पुरानी यादों को ताज़ा करते रहे थे।

भारतीय विद्या संस्थान और उसके संचालक ने आश्रम के स्थूल रूप पर विशेष ध्यान नहीं दिया, अतः उसका भवन सीमित रह गया है। एक बड़ा हॉल है। कुछ और इमारतें हैं, पर उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके साथ अनेक सेवा-भावी व्यक्ति जुड़े हैं। मुझे यह जानकर बहुत ही सुखद आश्चर्य हुआ कि उसके सारे शिक्षक और शिक्षिकाएं अवैतनिक रूप में काम करते हैं। आदेश कैनेडा से समय-समय पर वहां आते रहते हैं।

भोजन के उपरान्त आश्रमवासियों ने बड़े प्रेम से हमें विदा किया। मोहन श्यामलाल मुझे अमीर के यहां छोड़ने आये। हम लोग रास्ते भर आश्रम की चर्चा करते रहे। वहां के सांस्कृतिक और सार्वजनिक जीवन में आदेश का इतना स्थान बन गया है कि एक सड़क का नाम ही उनके नाम पर रख दिया गया है।

१०/ट्रिनीडाड से विदाई

मैं १५ अप्रैल की रात को वहां पहुंचा था। वे दिन कैसे निकल गये, पता भी नहीं चला। सम्मेलन के अनेक कार्यक्रम हुए। बहुत-से विशिष्ट व्यक्तियों से भेंट हुई, पुराने लोग मिले, नयों से परिचय हुआ। विभिन्न देशों से आये प्रतिनिधियों से प्रगाढ़ सम्बंध जुड़े। मारिया नेग्येसी ने हंगरी के अपने विश्वविद्यालय के छात्रों को सुनाने के लिए एक मेरी लम्बी इंटर्व्यू रिकॉर्ड की। सुरेन्द्र गंभीर का आग्रह था कि मैं थोड़ा समय निकाल कर वाशिंगटन से फिलेडलफिया स्थित उनके 'पैनसिलवानिया विश्वविद्यालय' में आऊं। उसके प्रदर्शन के लिए वह एक घंटे का वीडियो तैयार करवायेंगे, पर वह बाद की बात थी।

२० अप्रैल की रात को सुरेन्द्र ऋतुपर्ण के प्रीतिभोज से आकर मैं देर तक अमीर-दम्पत्ति से बातें करता रहा। उनकी शालीनता और आत्मीयता की मेरे मन पर गहरी छाप पड़ी थी। वह हिन्दी नहीं पढ़ पाते थे। अमीर तो हिन्दी बोल भी नहीं पाते थे, जमीला बोल लेती थी। अपने संक्षिप्त निवास की स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए मैंने उन्हें एक कहानी (बोध कथा) अंग्रेजी में लिखकर दी, जिसे उन दोनों ने बहुत पसंद किया। कुछ कविताएं भी अंग्रेज़ी में उनके लिए लिखीं, जिन्हें पढ़ते हुए उनकी आंखें चमक उठी थीं। वह बार-बार कहते थे, "फिर आइये, अधिक समय के लिए आइये, और हमारे साथ ठहरिये।" अपने प्रेम से उन्होंने मेरा मन जीत लिया था।

विदेश की अपनी यात्राओं में मैं बहुत-से परिवारों में ठहरा हूं, पर इस परिवार की मुझ पर विशेष छाप पड़ी। सारी सुविधाओं का उन्होंने ध्यान रक्खा, यहां तक कि जब मैंने अपना सामान पैक किया तो मेरा एक भी कपड़ा मैला नहीं था। उनसे बिछुड़ने की कल्पना से मन भारी हो रहा था।

हमें सवेरे ५ बजे हवाई अड्डे पहुंच जाना था। जमीला ने साढ़े तीन बजे का एलार्म लगा दिया था, पर मुझे नींद नहीं आई। तरह-तरह के विचार मन में चक्कर लगाते रहे। जमीला ने कहा था कि ज़िन्दगी में हमने इतना काम किया है, आज भी कर रहे हैं, कमाई अच्छी की है, पर मन जैसे भीतर से ख़ाली-ख़ाली-सा लगता रहता है। समझ में नहीं आता, क्या करें! मैंने उनसे कहा था कि विदेशों का जीवन ही ऐसा है कि व्यक्ति पुरुषार्थ करता है, पैसा ख़ूब कमाता है, पर मन ख़ाली रहता है। मन तो प्यार से भरता है, पैसे से नहीं। मैंने उन्हें सलाह दी कि वह अपनी दैनिक डायरी रक्खें। दिन में जो भी भीतर-बाहर हो, उसे सच्चाई से लिखें। उससे उनके मन का कुछ हद तक समाधान हो जायगा। उन्हें लगेगा कि उनका कोई अंतरंग साथी है, जो उनको अपने अंतर की बात कहने का अवसर देता है। जमीला के यह बात गले उतर गई और उन्होंने रोज़ डायरी लिखने का निश्चय किया।

सोचता रहा, सब दुःखी हैं, पैसे वाले भी, बिना पैसे वाले भी। सबकी अपनी-अपनी समस्याएं हैं। अमीर भीतर से ग़रीब हैं और ग़रीब भीतर-बाहर दोनों से।

सोच-विचार में समय निकलता गया। ढाई बजे बिस्तर पर पड़े रहना भारी लगने लगा तो उठा। आराम से तैयार हुआ। रात को

पैक किये हुए सामान को एक बार फिर देखा। तबतक साढ़े तीन बज गये। घड़ी का एलार्म बजे कि उससे पहले किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। अमीर खड़े थे। सवा चार बजे टैक्सी आ गई। अमीर अपनी गाड़ी भेजने को तैयार थे, लेकिन सम्मेलन के अधिकारियों ने टैक्सियों का प्रबंध कर दिया था।

हमने अमीर और जमीला के साथ अंतिम बार जलपान किया। फिर अंक में भर कर उन्होंने विदा किया। हम सबके मन भारी हो रहे थे।

सबेरे का समय होने के कारण हवाई अड्डे के मार्ग में भीड़ नहीं थी। चालीस मिनट में वहां पहुंच गये। सम्मेलन के जन-सम्पर्क-अधिकारी पैट्रिक एडवर्ड्स वहां हमारी राह देख रहे थे। गाड़ी सीधी हवाई अड्डे के भीतर विशिष्ट व्यक्तियों के कक्ष के बाहर रुकी। पैट्रिक ने सामान उतारा और हमसे पासपोर्ट और टिकिटें लेकर वहां की खानापूरी करा दी। बच्चू प्रसाद सिंह दूसरे किसी विमान से जा रहे थे। हमारे प्रतिनिधि-मंडल के हम चार सदस्य साथ थे—शंकर दयाल सिंह, राजेन्द्र अवस्थी, माजदा असद और मैं। शंकर दयाल सिंह को न्यू यार्क से लंदन जाना था, राजेन्द्र अवस्थी और माजदा असद को न्यूजर्सी और मुझे वाशिंगटन। विमान को सेन हुआन हवाई अड्डे पर उतरना था, जो अमरीका में प्रवेश का पहला हवाई अड्डा था।

थोड़ी देर में चांका सीताराम और रविजी आ गये। अभी हमारे पास समय था। बातें करते रहे। सम्मेलन के उन दोनों अधिकारियों ने कहा कि वे सम्मेलन की पूरी रिपोर्ट, निबंधों की प्रतिलिपियां और सम्मेलन के चित्र शीघ्र ही तैयार करवा कर भेज देंगे। इसके लिए और उनके आतिथ्य के लिए उन्हें धन्यवाद दिया। समय यों ही निकल

गया। चलते-चलते उन्होंने कहा कि हम अब एक बड़ा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन करेंगे। उसमें आपलोगों को अवश्य आना है। विमान के रवाना होने की सूचना मिलने पर हम लोगों ने विदाई ली और विमान की ओर बढ़ गये। ६ बजकर ३६ मिनट पर विमान ट्रिनीडाड की भूमि से नाता तोड़कर अमरीका की ओर उड़ चला।

११/यात्रा में व्यवधान

सेन हुआन तक की यात्रा बड़े आनंद से हुई। कुल मिलाकर मौसम अच्छा रहा। यात्रा के अंतिम चरण में बादल घिर आये, पर उससे इतने बड़े जहाज़ पर क्या असर पड़ने वाला था ! विमान में जलपान मिला, खाना मिला। अच्छा यह हुआ कि शाकाहारी भोजन वहां उपलब्ध था। व्योम बालाएं अब बदल गई थीं, पर जो थीं, वे सेवा-भावी, हंसमुख और विनम्र थीं।

विमान सेन हुआन के हवाई अड्डे पर उतरा। बड़ी भीड़ थी। विमान यात्रियों से भरा था। सब इमीग्रेशन में पहुंचे। वहां जो हाल देखा तो होश ग़ायब हो गये। रस्सी बांध कर टेढ़े-मेढ़े गलियारे बनाये गये थे, जिसमें पंक्तिबद्ध होकर सबको आगे बढ़ना था। उस विशाल कक्ष के एक किनारे पर बारह-चौदह काउण्टर थे, जिनपर बैठे अधिकारी पासपोर्ट जांच रहे थे और इमीग्रेशन की औपचारिकताएं

पूरी कर रहे थे। हमारे आगे यात्री बहुत बड़ी संख्या में थे। चींटी की चाल से आगे बढ़ती पंक्ति को देखकर मैंने शंकर दयाल सिंह से कहा कि वह पंक्ति से निकल कर अधिकारी से मिल लें और कह दें कि हम भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्य हैं और हमें आगे जाने के लिए शीघ्र दूसरा विमान पकड़ना है, किन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि कोई बात नहीं है, जल्दी ही हमारी बारी आ जायगी।

बारी तो आई, लेकिन इतनी देर में कि इमीग्रेशन की ख़ाना-पूरी होने के बाद जब हम सामान लेकर दूसरे विमान के काउण्टर पर पहुंचे तो हमें पता चला कि हमारा विमान चला गया है। हम लोग हैरानी में पड़े। अब क्या हो ? शंकर दयाल सिंह को आगे से लंदन का विमान पकड़ना था और वह उसकी सूचना लंदन भारतीय उच्चायुक्त डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी को दे चुके थे। माजदा असद न्यूजर्सी में अपनी बेटी को सूचित कर चुकी थीं और मैं वाशिंगटन डी० सी० में अपने धेवते को। हम सब परेशानी में पड़ गये। काउण्टर पर बैठी महिला को जब मैंने अपनी कठिनाई बताई तो उसने बड़े सहज भाव से कहा, "आपको जल्दी आना चाहिए था।" मैंने जब भीड़ की बात बताई तो वह बोली, "आपको वहां कह देना चाहिए था। अब जब जहाज़ छूट गया तो मैं क्या कर सकती हूं ?" उसकी बात सच थी। हमारे लिए वह विमान को रोक तो सकती नहीं थी।

मैंने अपनी लाचारी बताई। उस काउण्टर पर कुछ अन्य व्यक्ति थे। हम सबने उन्हें पकड़ लिया। और यात्री भी आ गये। सबकी अपनी-अपनी हैरानी थी।

मैं जिस महिला से बात कर रहा था, उसको जब मैंने समझाया कि, मैं अस्सी वर्ष का व्यक्ति कहां भटकूंगा और चालीस-पैंतालीस

मील की दूरी से हवाई अड्डे आने वाले मेरे रिश्तेदार कितनी द्विविधा में पड़ेंगे, तो उसने आगे जाने वाले जहाज़ों की तालिका देखी। फिर कहा, "मैं अभी थोड़ी देर में छूटने वाले जहाज़ में आपकी बुकिंग किये देती हूं, जिससे आपको यहां प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। हां, बीच में आपको एक जगह जहाज़ बदलना होगा और वह जहाज़ आपने जो समय की सूचना दी है, उससे दस मिनट पहले ही पहुंचा देगा।"

मैंने उसे धन्यवाद दिया। उसने मेरा सामान तुलवाया। बोली, "आप सामान के बारे में चिन्ता न करें। सीधा वाशिंगटन को बुक किये देती हूं। वहां जाकर ले लीजियेगा।" इतना कहकर उसने नया टिकिट बना दिया। कहा, "अब अधिक समय नहीं है। आप झटपट चले जाइये।" मैंने कहा, "घरवालों को तो दूसरे जहाज़ की सूचना है। आप उन्हें खबर करवा दीजिये।" उसने कहा, "मैं आपके साथ अपना आदमी भेजे देती हूं। यह आपसे फ़ोन करवा देंगे और जहाज़ पर भी पहुंचा देंगे।"

उसने एक आदमी को सारी सूचनाएं देकर मेरे साथ कर दिया। उसने वाशिंगटन फ़ोन किया, मुझसे बात कराई। बेटी अन्नदा बोल रही थी। वह वहां १६ अप्रैल को पहुंच गई थी। उसे बदले विमान और समय की सूचना देकर हम लोग जहाज़ पर पहुंचे। उस भाई ने कहा कि अभी कुछ देर है। आप यहां बैठ जायं। जब सूचना हो तो जहाज़ पर चले जाइये।

मेरी जान-में-जान आ गई। आराम से बैठ गया। वहां एक अख़बार पड़ा था। उसे पढ़ता रहा। घोषणा होने पर विमान में बैठा और ठीक दो बजकर पच्चीस मिनट पर रैले दरहम पहुंचा। वहीं से

तीन बजकर चालीस मिनट पर दूसरे विमान से रवाना होकर शाम को चार बजकर पचास मिनट पर वाशिंगटन के हवाई अड्डे पर जा उतरा। वहां बेटी अन्नदा, धेवता पराग और उसकी पत्नी शिल्पी प्रतीक्षा कर रहे थे। सबसे मिलकर खुशी हुई। सेन हुआन की सारी खीज दूर हो गई। वहां की सदाशयी बहन ने बड़ी तत्परता से सारा काम निबटा कर मुझे पहले समय से दस मिनट पूर्व ही वाशिंगटन पहुंचा दिया।

सामान आने पर हम लोग जर्मनटाउन के लिए रवाना हो गये, जो वाशिंगटन से थोड़ी दूर था।

द्वितीय चरण

१२/जर्मनटाउन (मेरीलैण्ड) में

हवाई अड्डे से जर्मनटाउन आते-आते कई बातें ध्यान में आईं। पहली यह कि मौसम बहुत बढ़िया था। न अधिक गर्मी थी, न सर्दी। दूसरे, वसंत का आगमन हो रहा था। चारों ओर पेड़ों पर नई कोंपलें फूट रही थीं। तीसरे, रास्ता बहुत ही साफ़-सुथरा था। चौथे, सड़क पर कोई भी आदमी पैदल चलता नहीं दीख पड़ता था। देश की सम्पन्नता साफ़ दिखाई दे रही थी।

बातें करते हुए रास्ता योंही पार हो गया। दिल्ली से १० अप्रैल

को चला था। इन दिनों वहां का कोई विशेष समाचार नहीं था। घर आकर चैन की सांस ली। पिछले दिनों की यात्रा और भागदौड़ के बाद थोड़े आराम की जरूरत थी। आगे के नौ दिन खूब आराम किया।

अमरीका की यह मेरी चौथी यात्रा थी। पहली बार सन् १९७२ में आया था। पत्नी साथ थीं। उस प्रवास में अधिकांश समय अपने बेटे सुधीर और उसके परिवार के साथ कैनेडा में व्यतीत हुआ था। उसने कैनेडा में ख़ूब घुमाया था। नियाग्रा प्रपात, औटवा, वन थऊजेण्ड आइलैण्ड और न जाने कहां-कहां ले गया था। फिर कार से अमरीका के लिए निकले, तो उसने न्यूयार्क, वाशिंगटन, बॉल्टीमोर, कोलम्बिया, मैंचेस्टर, बोस्टन आदि की सैर करवाई। न्यूजर्सी, सिद्धाचलम, अटलांटिक सिटी का भी चक्कर लगवाया।

रूस और अमरीका विश्व के दो सर्वशक्तिशाली राष्ट्र माने जाते थे। मैं सन् १९५६ में पहली बार रूस हो आया था। अमरीका की यात्रा ने मुझे दोनों महान राष्ट्रों के तुलनात्मक अध्ययन का अवसर दिया। पाया कि दोनों देशों के सभी क्षेत्रों में ज़मीन-आसमान का अंतर है। अमरीका में पूर्ण स्वतंत्रता थी, रूस में पूरी तरह जकड़ थी। वहां राजनैतिक शिकंजा इतना जबर्दस्त था कि कोई भी नागरिक राजनीति के बारे में मुंह नहीं खोल सकता था। उपभोक्ता वस्तुएं सीमित थीं। आदमी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था। मैंने उस सबका सविस्तार वर्णन अपनी पुस्तक 'रूस में छियालीस दिन'[१] में किया है। उस पुस्तक पर मुझे 'सोवियत-लैण्ड नेहरू पुरस्कार' मिला था। सन् '७२ के प्रवास में मैंने अमरीका के लोक जीवन को निकट

---

१. सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित।

से देखा। मेरा मन उससे प्रभावित नहीं हुआ। वहां की निर्बाध स्वतंत्रता, विकसित अर्थतंत्र, भौतिक सुविधाएं, समृद्धता, सबकुछ मेरी समझ और पकड़ से परे था। गांधी विचार की सादगी और सात्विकता से वह जीवन मेल नहीं खाता था। एक सौ बारह मंज़िल की अम्पायर एस्टेट, भीमकाय कल-कारख़ाने, लम्बे-चौड़े बाज़ार, शानदार भवन, नाना प्रकार की मोटरें, डरावनी रफ्तार से दौड़ता यातायात, चौड़ी सड़कें, ऊंचे-ऊंचे पुल, विश्वविद्यालय, अस्पताल, पुस्तकालय, शोध-संस्थान आदि सब-कुछ मेरी समझ से परे थे।

बीस वर्ष में अमरीका के तीन चक्कर लगाने के बाद आज भी मेरी धारणा बहुत बदली नहीं है। रूस के पतन ने मेरी इस मान्यता को और भी पुष्ट किया है कि भौतिक उपलब्धियां व्यक्ति को सुविधाएं अवश्य प्रदान करती हैं, लेकिन आत्मिक सुख नहीं देतीं। देखता हूं, यहां का औसत आदमी ख़ूब पुरुषार्थ करता है, बिना पुरुषार्थ के यहां आदमी का ठिकाना ही नहीं है, बहुलता के बीच जीता है, किन्तु कुल मिलाकर खोया-खोया-सा रहता है। भौतिक मूल्यों की उपासना ने उसके अंतर के रस को सुखा दिया है। उसका पेट भरा है, पर आत्मा भूखी है। विज्ञान के क्षेत्र में उसने आश्चर्यजनक उन्नति की है, कम्प्यूटर का विस्मयकारी विकास किया है, लेकिन विज्ञान और अध्यात्म का मेल वह अभी तक नहीं साध पाया। यही कारण है कि उसके हाथ जो ऊर्जा लगी है, वह चकाचौंध उत्पन्न करती है, डराती है, मानव को आश्वस्त नहीं करती।

रूस ने ज्योंही भौतिक मूल्यों के लिए अपना द्वार खोला, उनकी उपासना आरंभ की कि उसके पतन का मार्ग खुल गया। वैज्ञानिक क्षेत्र में उसकी उपलब्धियां अमरीका से कम नहीं थीं, बल्कि अमरीका

को आतंकित करने वाली थीं, लेकिन उसके जीवन-मूल्य बदले तो उसका सम्पूर्ण वैभव धूल में मिल गया। उसका गौरवशाली, महिमामंडित अतीत आज बेबसी की सांस ले रहा है।

संभव है, मेरे ये निष्कर्ष बहुत-से लोगों के गले न उतरें, लेकिन आज भी मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि जो आनंद सादगी में है, वह आडम्बर में नहीं है और जो सुख सात्विकता में है, वह विलासिता में नहीं है।

जो हो, इस वैभव-पूर्ण देश में, जीवन-मूल्यों को एक ओर करके देखें तो भी कुछ है, जो हमें बहुत-कुछ सिखा सकता है। स्वच्छता यहां इतनी है कि उसे देखकर मन अनिर्वचनीय आनंद अनुभव करता है। क्या मजाल कि एक छोटा बालक भी कूड़ा-कचरा सड़क पर डाल दे! जगह-जगह कूड़ेदान रक्खे हैं। लोग उन्हीं का उपयोग करते हैं। वैसे न्यूयार्क तथा कुछ अन्य नगरों की इनी-गिनी बस्तियां हैं, जहां लोग स्वच्छता के प्रति उतने सावधान नहीं हैं, फिर भी कुल मिलाकर उनकी स्वच्छता की भावना की सराहना करनी होगी।

दूसरी बात है व्यापार में ईमानदारी और सच्चाई। खाद्य सामग्री में मिलावट यहां भारी दण्डनीय अपराध माना जाता है। दूध, दही, रस, पनीर आदि में शुद्धता का विशेष ध्यान रक्खा जाता है। फल, सब्ज़ी आदि सब बढ़िया मिलते हैं। व्यापार-व्यवहार में प्रामाणिकता है। ग्राहकों के साथ धोखे को बुरी निगाह से देखा जाता है। लोग मानते हैं कि व्यापारी की सच्ची दौलत ग्राहक है। उसे हर प्रकार से संतुष्ट रखने का प्रयत्न किया जाता है।

योग्यता की यहां क़द्र है। वैसे तो ईर्ष्या-द्वेष सब जगह होते हैं, लेकिन योग्य व्यक्ति की बराबर टांग खींचते रहना यहां हेय माना

जाता है। यदि कोई कर्मचारी उन्नति के पद पर जाने की कोशिश करता है तो उसका मालिक उसकी सहायता करता है, अथवा उसे स्वयं सुविधाएं दे देता है। आजकल यहां भी बेरोज़गारी की समस्या है, फिर भी मनचाहा न सही, काम मिल जाता है। भूखों मरने की नौबत नहीं आती। चीन, जापान, रूस में मुझे एक भी भिखारी दिखाई नहीं दिया था, किन्तु यहां पर कभी-कभी याचक दिखाई दे जाते हैं।

चिकित्सा यहां सारी दुनिया से अधिक महंगी है। मामूली-से-मामूली चिकित्सा के लिए हज़ारों डालर पर आ बनती है। रोग गंभीर हो तो लाखों डालर ख़र्च हो जाते हैं। लेकिन सरकार की ओर से स्वास्थ्य के बीमे की व्यवस्था है। अधिकांश लोग अपने स्वास्थ्य का बीमा करा लेते हैं और उसका नवीनीकरण कराते रहते हैं। जितने दिनों का और जैसा बीमा कराओ, उसके हिसाब से पैसे देने होते हैं, लेकिन उससे चिकित्सा ख़र्च बहुत कम हो जाता है और काफ़ी सुविधाएं मिल जाती हैं।

पढ़ाई की यहां अच्छी व्यवस्था है। विभिन्न देशों के लोग पढ़ने के लिए, विशेषकर तकनीकी शिक्षा के लिए, यहां आते हैं। यहां के शिक्षा-प्राप्त लोगों को सभी देशों में मान मिलता है। भारत के इंजीनियरों, चार्टर्ड एकाउंटेंटों, प्रोफ़ेसरों, डॉक्टरों आदि की यहां धाक है। उन्हें अधिक कुशाग्र बुद्धि का माना जाता है।

हरियाली के लिए यहां की सरकार और नागरिक गहरा प्रेम रखते हैं। सड़कों के दोनों ओर की हरियाली देखते ही बनती है। ऊंचे-ऊंचे सघन वृक्ष, हरी घास, फूलों के पौधे देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो हम किसी वन-उपवन में विचरण कर रहे हों। हज़ारों मील की भूमि को प्रकृति का वरदान बना दिया है। हम लोगों ने कार से यहां

हज़ारों मील की यात्रा की है, इतनी लम्बी यात्रा में एक भी स्थान ऐसा देखने में नहीं आया कि जिससे वितृष्णा पैदा हुई हो। नागरिक अपने घरों को भी फूल-पौधों से अच्छी तरह सजाते हैं।

लोगों के स्वास्थ्य को देखकर खुशी होती है। दुबले-पतले, रोगी यहां बहुत कम देखने में आते हैं। वृद्धावस्था में भी लोग मरे-गिरे से नहीं दीख पड़ते। उनके पैरों की गति अचरज में डाल देती है। अपाहिज तथा अपंग लोगों को यहां हर प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। शौचालयों में उनके लिए ऐसी व्यवस्था रहती है कि वे अपनी हाथ-गाड़ियां अंदर तक ले जा सकें। दुकानों में भी वैसा ही प्रबंध है। सच यह है कि अपाहिजों और अपंगों की सभी लोग सहायता करते हैं। वे अपनी हाथ की गाड़ियों से सड़क पार करते हैं तो मोटर गाड़ियां रुक जाती हैं।

यहां के जीवन की और भी अनेक विशेषताएं हैं। उन सबका उल्लेख करना संभव नहीं है। लेकिन चित्र तो श्वेत-श्याम के मेल से बनता है। यहां के जीवन की कुछ मर्यादाएं भी हैं। यहां के जीवन में विलासिता है। सिगरेट और शराब का खूब चलन है। शराब और मादक द्रव्य कुछ वर्गों के जीवन में इतने गहरे चले गये हैं कि उनका व्यवहार प्रायः उच्छृंखल हो जाता है। शराब के पीछे वे अपने घर को तबाह कर देते हैं। हमने कई घर ऐसे देखे, जो एकदम ख़ाली पड़े थे। शराब के लिए लोगों ने अपने रसोई के बर्त्तन तक बेच डाले थे। स्कूलों के छात्र-छात्राएं तक शराब और सिगरेट का सेवन करते हैं।

तलाक़ यहां खूब होते हैं। छोटी-छोटी बातों पर वैवाहिक बंधन टूट जाता है। परिवार बिखरे हुए हैं। लड़के-लड़की बड़े हुए कि स्वतंत्र

जीवन व्यतीत करते हैं। संयुक्त परिवार नाम की चीज़ ही यहां नहीं है। अधिकांश परिवारों में अंततः वृद्ध स्त्री-पुरुष रह जाते हैं, जो अपना मर्यादित जीवन जीते हैं। गर्भपात पर यहां कोई प्रतिबंध नहीं है। छात्राएं तक शारीरिक संबंध स्थापित करने से नहीं चूकतीं और गर्भ गिराने को भी बुरा नहीं मानतीं। युवकों और युवतियों का जीवन मुक्त रहता है। वे किसी प्रकार का बंधन स्वीकार नहीं करते। माता--पिता तथा अन्य अभिभावक भी उनकी आज़ादी पर रोक नहीं लगा पाते। उनकी इच्छाएं अमर्यादित होती हैं।

धर्म-अध्यात्म के असंख्य केन्द्र हैं। गिरजे, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, आश्रम चारों ओर फैले हुए हैं। धर्म-गुरुओं के प्रवचन भी यहां समय-समय पर होते रहते हैं, लेकिन विडम्बना यह है कि धर्म का जितना गहरा स्थान लोगों के जीवन में होना चाहिए, नहीं है। इसके लिए अवकाश चाहिए, किन्तु लोगों के पास क्लब, खेल-कूद, दूरदर्शन आदि के लिए समय है, धर्म-अध्यात्म के लिए नहीं। शनिवार-रविवार तथा अन्य छुट्टियों के दिन भले ही कुछ लोग धर्म-स्थानों पर एकत्र हो जायं, दूसरे दिनों में उनका समय निकालना असंभव है।

इधर लोगों का ध्यान शाकाहार की ओर जा रहा है। संभवतः वे देखते हैं कि शाकाहारी भोजन सामिष भोजन की अपेक्षा अधिक सुपाच्य और स्फूर्त्ति प्रदान करने वाला है। लम्बी आयु भी वह देता है। पर अभी वे प्रयोग की अवस्था में हैं, उनकी आस्था उस पर नहीं है। इधर शाकाहार के पक्ष में प्रचार भी कुछ अधिक हुआ है, जिससे मांसाहार की बुराइयां और शाकाहार की गुणवत्ता उजागर हुई है।

खुली आंखों से देखने पर जीवन के ये उभय पक्ष सहज ही सामने

आ जाते हैं।

टौरेंटो से सुधीर का प्रायः रोज ही फ़ोन आ जाता था। हम लोग अपना आगे का कार्यक्रम निश्चित करना चाहते थे, पर हो नहीं पा रहा था। अंत में काफ़ी विचार-मंथन के बाद तय हुआ कि पराग और शिल्पी मुझे तथा अन्नदा को लेकर कार से १ मई को साउथ फ़ॉल्सबर्ग बाबा मुक्तानंद परमहंस के आश्रम जायं और हमें वहां छोड़कर पराग-शिल्पी लौट आवें। इस निश्चय के बाद चिन्ता दूर हो गई, मन शान्त हो गया। अन्नदा और मेरे पास वाशिंगटन से न्यूयार्क का हवाई जहाज़ का टिकिट था। साउथ फ़ॉल्सबर्ग न्यूयार्क से सौ मील था। किन्तु पराग ने कार द्वारा जाने का ही आग्रह रक्खा, हालांकि सड़क के मार्ग से वह लगभग सात घंटे का रास्ता था।

फ़िलेडलफ़िया से कई बार सुरेन्द्र गंभीर का फ़ोन आया। वह मुझे अभी या मई के मध्य में अपने यहां चाहते थे। इनका कहना था कि पराग मुझे ट्रेन में बिठा दे और वह मुझे फ़िलेडलफ़िया पर उतार लें, पर बस या ट्रेन किसी से भी भेजने को पराग राज़ी नहीं हुआ। उसका कहना था कि वह या तो कार से आकर ले जायें या हवाई जहाज़ का टिकिट भेजें। बातचीत के बाद वह कार्यक्रम आगे के लिए टल गया।

दिल्ली को अबतक कोई पत्र नहीं लिखा था। अब कई पत्र लिखे और उन्हें एक लिफ़ाफ़े में 'सस्ता साहित्य मण्डल' को इस सूचना के साथ भेज दिया कि वे उन चिट्ठियों को यथास्थान भिजवा दें। एक पत्र श्री लक्ष्मी निवास बिरला को लिखा।

इस बीच शिल्पी की बड़ी बहन टॉनी (विनीता) अपने पति देवचंद चौधरी के साथ आ गईं। ये लोग जापान में रहते हैं और

हीरे-जवाहिरात का व्यापार करते हैं। टॉनी पंद्रह वर्ष से गठिया की शिकार है। उसके हाथ-पैरों की उंगलियां मुड़ गई हैं। उनके इलाज के लिए वह अमरीका आई थी। चिकित्सा के बाद डाक्टर ने परीक्षण के लिए उसे पुनः बुलाया था। बीच के इस समय में वह यहां अपने पति के साथ आ गई थी। बड़ी हंसमुख है। रोग से उसने हार नहीं मानी है। डाक्टर आशा करते हैं कि उसकी उंगलियां सीधी हो जायंगी।

गुरुमां से न्यूयार्क बात हुई। वह हनुमान मंदिर की अधिष्ठात्री हैं, मेरे प्रति उनका गहरा अनुराग है। मैं जब-जब न्यूयार्क गया, उन्हीं के साथ ठहरा। 'वैदिक हैरीटेज' नामक पत्रिका निकालती हैं। धर्म-क्षेत्र में उनका बड़ा मान है। छोटे केन्द्र से आरंभ कर अब उन्होंने एक विशाल संस्थान की रचना कर ली है। सन् १९८७ में मैं सपरिवार उनके साथ कई दिन ठहरा था। विख्यात संगीत-शास्त्री पं० जसराज का वहां कार्यक्रम था, समारोह का मुख्य अतिथि मैं था। बड़े मधुर वातावरण में कुछ समय व्यतीत हुआ था।

गुरुमां को फ़ोन किया तो उनसे पता चला कि वह २० मई को बाहर जायंगी और एक महीने में लौटेंगी। साउथ फ़ॉल्सबर्ग जाने से पूर्व मेरा मन दो-तीन दिन उनके साथ बिताने का था, पर मेरी वह इच्छा पूरी नहीं हुई।

मुनि सुशील कुमार से सिद्धाचलम सम्पर्क किया तो पता चला कि वह 'अर्थ सम्मिट' में गये हैं, १६ जून को लौटेंगे। मैं सन् १९८७ में अपने पूरे परिवार के साथ तीन दिन उनके आश्रम में ठहर चुका था। आश्रम न्यूजर्सी के निकट था, पर सुशील मुनि की अनुपस्थिति में वहां जाने में कोई तुक नहीं थी।

इस बीच मेरीलैण्ड राज्य के विख्यात नगर बॉल्टीमोर जाने का

एक दिन कार्यक्रम बनाया। हम सब कार से वहां गये। दोपहर बाद वहां पहुंचे और पूरी शाम वहां के इनर हार्बर पर बिताई। बड़ा रमणीक स्थान है। वाशिंगटन के निकट होने के कारण इसका वैभव कुछ कम हो गया है, फिर भी उसकी शोभा देखते ही बनती है। इस नगरी की स्थापना सन् १७२६ में हुई थी और उसे सन् १७६७ में नगर निगम के अंतर्गत नगर का दर्जा मिला। आबादी उसकी कुल बीस हज़ार थी। सन् १८१२ के युद्ध में अंग्रज़ों ने उसपर आक्रमण किया, पर सफलता नहीं मिली। बॉल्टीमोर बंदरगाह में जहाज़ खड़ा करके उस पर बमबारी की गई। अब तो उसके आधुनिक विशाल भवन, चौड़े रास्ते, फव्वारे और शॉपिंग सेन्टर उसका वैभव प्रकट करते हैं।

इनर हार्बर बॉल्टीमोर के आकर्षण का सबसे बड़ा केन्द्र है। छुट्टी के दिन वहां सैलानियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। वहीं बहुत बड़ा बाज़ार है, जिसमें सब प्रकार की चीज़ें मिल जाती हैं। अनाज, कोयला और मसालों के लिए वह एक बड़ा बंदरगाह है। एक विशाल मत्स्यालय भी है। पहाड़ी स्थान होने के कारण सैर के लिए वह अत्यन्त उपयुक्त है। अमरीका के जल-पोत, जल-क्रीड़ा करती नावें, तट की हरियाली, भांति-भांति के पुष्प उसकी शोभा में चार चांद लगाते हैं।

हम लोग बहुत देर तक वहां घूमते रहे, फिर मत्स्यालय में बड़ी मछलियों (सीलों) के करतब देखे, शॉपिंग सेंटर में तरह-तरह की चीज़ों पर निगाह डाली। फिर रेस्तरां में जाकर जलपान किया। मौसम अच्छा था, थोड़ी सर्दी थी, उसकी व्यवस्था करके हम गये थे। इसलिए आनंद से घूमते और खाते-पीते रहे। रात का अंधेरा फैले, उससे पहले ही हम रवाना हो गये।

'न्यूज़ इंडिया' अख़बार से भारत के बहुत-से समाचार मिले। यह पत्र न्यूयार्क से निकलता है और भारत की ख़बरें खूब खुलकर देता है।

१३/बाबा मुक्तानंद और गुरुमाई के आश्रम में

१ मई को सवेरे जल्दी उठ गये। तैयार हुए, जलपान किया और साढ़े नौ बजे अन्नदा, पराग, शिल्पी और मैं कार द्वारा साउथ फॉल्सबर्ग के लिए जर्मनटाउन से रवाना हुए। मेरीलैण्ड राज्य में कई उपनगर हैं। जर्मनटाउन उन्हीं में से एक है। पराग यहीं पर रहता है। बहुत साफ़-सुथरी बस्ती है। हरियाली ख़ूब है। राजमार्ग है। ज़रूरत की सब चीज़ें विभिन्न मॉलों में मिल जाती हैं।

हमें लगभग चार सौ मील की यात्रा करनी थी। हिसाब लगाया तो पता चला कि साउथ फॉल्सबर्ग पहुंचने में करीब सात घंटे लगेंगे, यानी रास्ते में थोड़ा रुक कर साढ़े चार बजे तक वहां पहुंच जायंगे। आश्रम के स्वामी सेवानंद को इसकी सूचना दे दी।

सारा रास्ता अत्यन्त मनोहारी था। हरा-भरा, साफ़-सुथरा, ऊंचे-ऊंचे सघन वृक्ष, लतिकाएं, जलाशय, प्रपात, कालीन जैसी घास,

रंग-बिरंगे फूलों के पौधे, सबकुछ इतना नयनाभिराम था कि मंज़िल बेहद सिकुड़ गई। सड़कें इतनी चौड़ी और यातायात इतना व्यवस्थित कि कहीं कोई बाधा नहीं। कई राज्य पार किये, कई नगर देखे। सबकी सराहना करते हुए चार बजे से पहले ही केट्सफ़िल पर्वत की तराई में बसे साउथ फ़ॉल्सबर्ग पहुंच गये। आश्रम का पता पराग ने पहले ही ले लिया था। नगर की परिक्रमा करके गंतव्य स्थान पर जा पहुंचे। सीधे आत्म-निधि गये, जहां हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। देखते क्या हैं कि सुधीर वहां मौजूद है। वह ढाई बजे ही वहां पहुंच गया था। उसके साथ स्वागत के लिए आश्रम के कई भाई-बहन खड़े थे। उनमें विनोद गुप्ता को मैं पहले से जानता था। वह मुझे दिल्ली में मिले थे। प्रतिभा और बिजू भी परिचित थीं। नौरीन तथा कुछ अन्य बहनों से वहां परिचय हुआ। हमें दो कमरों में ठहराया गया। एक में अन्नदा, सुधीर और मैं; दूसरे में पराग और शिल्पी। सुधीर अपने साथ टौरेंटों से मिठाई, नमकीन और फल लाया था। वह उसने निकाल कर खिलाये। आश्रम की ओर से भी कुछ खाद्य और पेय सामग्री आ गई। एक अत्यन्त प्रेमल परिवार एकत्र हो गया। विनोद और नौरीन तथा प्रतिभा आदि सबके चेहरे आनंद से खिले हुए थे।

आश्रम की यह मेरी तीसरी यात्रा थी। एक बार गणेशपुरी आश्रम में बाबा मुक्तानंद ने मुझसे कहा था, "यशपालजी, एक बार साउथ फ़ॉल्सबर्ग के आश्रम ज़रूर आइये। वहां बहुत ही तीव्र स्पन्दन हैं।" बाद में जब बाबा सन् १९७१ में कई देशों की यात्रा के बाद अमरीका जा रहे थे और मैं संयोग से उन्हें विदा करने के लिए बंबई के हवाई अड्डे पहुंच गया था तो बाबा ने मुझे एक माला पहनाते हुए साउथ

फ़ॉल्सबर्ग आने की बात पुनः याद दिलाई थी।

वह सुयोग मुझे शीघ्र ही मिल गया। मैं और मेरी पत्नी आदर्श कैनेडा जाने को हुए तो मैंने बाबा को सूचना दी। बाबा ने तत्काल संदेश दिया कि हम लोग पहले आश्रम आएं, फिर कैनेडा जायं। न्यूयार्क से आश्रम आने की सारी व्यवस्था वह करा देंगे। हम लोग न्यूयार्क पहुंचे तो हमारे ट्रेविल एजेंट की सूचना के आधार पर लेखक के नाते कैनेडी हवाई अड्डे पर हमें विशिष्ट व्यक्तियों की सुविधा मिल गई और हम ज़रा-सी देर में इमीग्रेशन तथा कस्टम की ख़ाना-पूरी करके बाहर निकल गये। सुधीर ने अपनी पत्नी की बहन प्रमिल को फ़ोन कर दिया था। वह हवाई अड्डे आ गई थीं। हमें अपने घर ले गईं। वहां जाते ही मैंने बाबा को फ़ोन किया तो मालूम हुआ कि हमें लेने के लिए उन्होंने हवाई अड्डे पर आदमी भेजा है। "आप साढ़े चार बजे यहां आ जायं। मैनहाटन आश्रम के लोग सारा प्रबंध कर देंगे।" बाबा ने सूचना दी। मैनहाटन से हम तो, कोई चालीस किलोमीटर दूर थे। प्रमिल और उनके पति मोहन ने कहा कि कोई बात नहीं है। हम आपको उसी के हिसाब से मैनहाटन पहुंचा देंगे। तभी बाबा का फिर फ़ोन आया कि यशपालजी और अम्मा थके हुए होंगे, आराम करें और सवेरे साढ़े नौ बजे साउथ फॉल्सबर्ग पहुंचें।

तदनुसार हम ठीक साढ़े नौ बजे आश्रम के अमृत नामक भवन के मुख्य द्वार पर पहुंचे। जिस भवन में गुरुमाई आज रहती हैं, वहीं एक भवन उस समय था। शेष काटेज थीं, जो आश्रम से कुछ दूर पर अमरनाथ नामक क्षेत्र में अलग-अलग बनी थीं। बाबा लॉबी में

मिले। हमारा अभिवादन स्वीकार करते हुए बोले, "यशपालजी, आप आ गये। बड़ा अच्छा, बड़ा अच्छा। यहां एक महीने रहेंगे।" आभार मानते हुए मैंने कहा, "बाबा, इतने दिन तो हम लोग नहीं ठहर सकेंगे। दिल्ली जल्दी लौटना है।" बाबा ने मुस्कराकर कहा, "नहीं-नहीं।"

हम लोग अठारह दिन आश्रम में रहे, बीच में जब सुधीर का बार-बार फ़ोन आया तो बाबा ने कहा, "उससे कह दो कि अबतक आप उसके लिए थे, अब बाबा के लिए हैं।" फिर भी सुधीर के आग्रह को देखकर बाबा ने हमें टौरेंटो भेजा और चलते समय कहा, "मैं आपको छुट्टी देता हूं। टौरेंटो से सुधीर को भी सपरिवार ले आइये और यहीं आइये।"

हमने यही किया। कुछ दिन टौरेंटो रह कर सुधीर के परिवार को साथ लेकर न्यूयार्क होते हुए साउथ फॉल्सबर्ग आये। सुधीर कुछ समय रहकर चला गया। हम लोग फिर वहां रहे। उन अठारह दिनों की अपनी अनुभूतियों पर मैंने एक विस्तृत लेख 'साउथ फ़ॉल्सबर्ग में अठारह दिन' लिखा, जो दिल्ली से प्रकाशित आश्रम की एक पत्रिका में छपा। आश्रम का तब उतना विकास नहीं हुआ था। पर बाबा का उस ओर ध्यान था। बाबा कभी-कभी घूमने में मुझे साथ ले लेते थे और आश्रम के विस्तार की चर्चा करते थे। उन्होंने बहुत-सी मूर्त्तियां बनवाई थीं, जिनमें से जय-विजय की मूर्त्तियां आश्रम के द्वार पर लगवा दी थीं। शेष इधर-उधर लगवा रहे थे। बाबा नित्यानंद की एक विशाल प्रतिमा और उनका मंदिर बनवाने की उनकी इच्छा थी। और भी बहुत-सी योजनाएं थीं।

साधकों की भीड़ तो वहां वैसे रोज ही होती थी, किन्तु शनिवार-रविवार को नित्यानंद ध्यान-कक्ष दो-ढाई हज़ार साधकों से खचाखच भर जाता था। बाबा शाम को संकीर्त्तन और ध्यान के लिए आते थे। दर्शन की लम्बी कतार लग जाती थी। बाबा रोज़ कुछ समय बोलते थे। पर कभी-कभी जब उनके बोलने का समय आता था तो वह कह देते थे, "आज हमारा गला ख़राब है। यशपालजी बोलेंगे।" ऐसा दिल्ली में भी वह करते थे। बाबा ने कितनी आत्मीयता से हम लोगों को वहां रक्खा, कितना प्यार दिया, कितना विह्वल होकर विदा किया, उसका स्मरण करता हूं तो रोम-रोम पुलकित हो उठता है। उन्हीं दिनों बाबा एक पुस्तक लिख रहे थे। उसकी पाण्डुलिपि जब उन्होंने पढ़ने के लिए मुझे दी तो मैंने सहज भाव से उसपर कुछ लिख दिया। उसे पुस्तक में बाबा ने छपवा दिया।

दूसरी बार मैं सपरिवार पुनः सन् १९८७ में थोड़ी देर के लिए वहां गया। न्यूयार्क जाते हुए मैं अपने परिवार के साथ बिना सूचना के वहां पहुंच गया। बाबा का पार्थिव शरीर नहीं रहा था। गुरुमाई वहां थीं। दर्शन में मिलीं। वही प्यार, वही आत्मीयता। वह अब बाबा की सचिव-दुभाषिया मालती नहीं थीं, उनके पीठ पर आसीन स्वामी चिद्विलासानंद (गुरुमाई) थीं। गुरुमाई ने भोजन के लिए विशेष आग्रह किया और जब हम भोजन के लिए विशेष कक्ष में एकत्र हुए तो आश्रम के प्रमुख न्यासियों ने गहरी भावना से हमारा स्वागत किया और मुझे तथा मेरी पत्नी को एक-एक सुंदर शाल भेंट किया। समय कम होने पर भी सारा आश्रम दिखाया। बाबा नित्यानंद का मंदिर (साधना कुटीर) तैयार हो चुका था और उसमें उनकी अत्यन्त

मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठापित हो चुकी थी। अंतराष्ट्रीय शांति के प्रतीक के रूप में एक विशाल प्लाज़ा भी बन गया था। उसके एक ओर देशभक्त मार्टिन लूथर किंग की मूर्त्ति लग गई थी। यह प्लाज़ा बाबा के सामने ही बन चुका था और उसका उद्घाटन हो गया था। वहां गांधी तथा कुछ अन्य महापुरुषों की मूर्त्तियां लगवाने की बाबा की कल्पना थी। शायद बुद्ध की लग चुकी थी। आश्रम को विकास के चरम शिखर पर पहुंचाने का महान ध्येय सामने रखकर गुरुमाई अब संलग्न थीं। आसपास की बहुत-सी भूमि बाबा के ज़माने में ही अर्जित कर ली गई थी, अब और भी भूमि प्राप्त की गई थी।

१ मई को इस बार जब हम वहां पहुंचे, गुरुमाई वहीं थीं। शाम को नित्यानंद मंदिर में 'शिव महिमम्न स्तोत्रम' का पाठ हुआ, फिर 'शिव मानस पूजा' का, 'गुरुदेव हमारा प्यारा' आरती हुई और अंत में धुन और ध्यान। सबकुछ इतना व्यवस्थित और भावपूर्ण था कि उपस्थित साधक-साधिकाएं किसी दूसरे लोक में पहुंच गये। हम सबने अत्यन्त मनोयोगपूर्वक सारे कार्यक्रमों में भाग लिया। भोजन हम पहले ही कर चुके थे।

रात को देर तक बातें करते रहे। विनोद ने बताया कि विकास की अब आगे क्या-क्या योजनाएं हैं और उनमें आश्रमवासी कितनी लगन से योगदान कर रहे हैं।

सबेरे साढ़े चार बजे आंख खुल गई। छः बजे विशाल 'नित्यानंद ध्यान कक्ष' में 'गुरु-गीता' का सामूहिक पाठ हुआ। फिर आरती हुई और अंत में 'श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारी' का संकीर्त्तन। कहना न

होगा कि यह संकीर्त्तन मुझे विशेष प्रिय है। थोड़ी देर ध्यान किया गया। स्थान की पवित्रता और वातावरण की स्निग्धता से मुझे बड़ा अच्छा लगा।

इस हॉल में, जहां बाबा बैठते थे, अब सायंकाल के कार्यक्रम में गुरुमाई बैठती हैं। आसन के थोड़ा ऊपर बाबा मुक्तानंद का बड़ा सजीव रंगीन चित्र लगा है। उनके दाहिने हाथ पर एक रंगीन चित्र बाबा नित्यानंद का और बाईं ओर उसी आकार का रंगीन चित्र बाबा मुक्तानंद का। इधर-उधर वीडियो की व्यवस्था है। हॉल की एक दीवार पर, द्वार के पास, मीरा आदि भक्त संतों के चित्र लगे हैं। उसके सामने की दीवार पर सिद्ध पुरुषों के। हॉल ऑडीटोरियम के रूप में बना है। बैठने की व्यवस्था कालीनों पर है। अस्वस्थ या अपाहिज लोगों के बैठने के लिए कुछ कुर्सियां हैं। स्त्री-पुरुष अलग-अलग बैठते हैं।

सबेरे के कार्यक्रम में मुझसे कुछ ही दूरी पर स्वामी सेवानंद बैठे थे। कार्यक्रम के समाप्त होने के बाद बड़े प्यार से मिले। उन्होंने बताया कि पिछले दिन वह कुछ बच्चों को लेकर न्यूयार्क चले गये थे। रात को देर से लौटे। हम सबने साथ-साथ जलपान किया। स्वामी माधवानंद भी आ गये। बैंकप्पा मिले। पूर्णिमा, गरिमा, स्मिता, वाणी, सताली आदि बहनें भी। हिन्दी-सेवी शर्माजी से पहली बार भेंट हुई। विदेशी लेखक नामदेव और उनकी विदेशी पत्नी उमा से मैं पहले से परिचित था। और भी कई साधक-साधिकाएं मिलीं। सम्पूर्ण परिवार प्रेम से ओत-प्रोत था। जो मिलता था, हृदय खोलकर मिलता था।

विशेष कक्ष में हम सबने दोपहर का भोजन किया। गरिमा और शर्माजी ने आग्रह किया कि मैं आश्रम-पत्रिका 'नीलेश्वरी' के लिए कुछ लिखा करूं। मैंने उन्हें बताया कि मेरी बोध कथाओं के चार

संग्रह प्रकाशित हुए हैं। मैं पत्रिका के लिए विशेष रूप से कुछ अवश्य लिखूंगा, लेकिन यदि वे चाहें तो पुस्तकों की बोधकथाओं का उपयोग कर सकते हैं। ये बोधकथाएं अत्यन्त प्रेरणादायक हैं।

भोजन के उपरान्त गुरुमाई ने अपने 'नमस्ते कक्ष' में हमें बुलाया। वहां आश्रम के साधकों की काफ़ी भीड़ थी। गुरुमाई बड़े स्नेह से मिलीं। अन्नदा, सुधीर, पराग और शिल्पी का मैंने परिचय कराया तो अन्नदा को देखकर बोलीं, "अरे, अन्नदा भी आई है !" सुधीर तो उनसे अनेक बार मिल चुका था। उसे वह बहुत प्यार करती हैं। पराग और शिल्पी पहली बार मिले थे। सबका स्वागत करते हुए उन्होंने पूछा कि हम लोगों के आने की ख़बर थी तो आश्रम के किन-किन स्वामियों ने हमारा स्वागत किया ? स्वामी माधवानंद ने बताया कि नौरीन ने उनसे कहा तो था, पर उन्हें ध्यान नहीं रहा और वह नहीं जा सके। इस पर गुरुमाई ने कहा, "आश्रम में अतिथि आवे और कोई भी उसका स्वागत करने को उपस्थित न हो, यह उचित नहीं है।" आगे उन्होंने कहा, "सिद्ध योग में प्रमाद के लिए स्थान नहीं है।" उन्होंने और भी बहुत कुछ कहा। स्पष्ट था कि वह 'अतिथि देवोभव' की भावना का कितना आदर करती हैं। फिर कई साधकों से वह कुछ-न-कुछ पूछती रहीं। वह उनका भेंट का समय था। थोड़ी देर तक भेंट का क्रम चला, फिर गुरुमाई चली गईं। आश्रमवासी अपने-अपने काम में लग गये।

हम लोग चार बजे नित्यानंद हॉल में गये। शनिवार का दिन था। हॉल विदेशी साधकों से खचाखच भरा था। कुछ भारतीय साधक भी थे, पर बहुत थोड़े। कुछ लोगों ने अपने अनुभव सुनाय। तभी गुरुमाई आ गईं। कीर्त्तन हुआ। गुरुमाई ने स्वयं कराया। उनके कण्ठ में ग़ज़ब

का माधुर्य था। उसके बाद उनका प्रवचन हुआ। लॉस ऐंजिल्स में उन दिनों दंगे हो गये थे। गुरुमाई ने अपने प्रवचन में बताया कि सत्संग की, कीर्तन की, बड़ी महिमा होती है। दंगे के बाद जब कुशल-क्षेम पूछने के लिए यत्न किया तो उत्तर देने वाली मशीन (आनसरिंग मशीन) ने कहा, यहां सब ठीक हो जायगा। चिन्ता की कोई बात नहीं है। गुरुमाई का ध्यान करो। "यह सुनकर मैं चकित रह गई। मुझे स्वयं लगा कि मैं गुरुमाई का ध्यान करूं।" गुरुमाई ने हंसते हुए कहा। सारा हॉल हंसी से गूंज उठा। आनंद की लहर चारों ओर व्याप्त हो गई। उन्होंने आगे कहा, "इतने बड़े हादसे के बाद भी लोगों का इतने शान्त बने रहना यह भगवत्-नाम के सतत जाप के कारण ही संभव हो सकता है।"

प्रवचन के उपरान्त 'ॐ नमः शिवाय' की धुन हुई, फिर थोड़ी देर ध्यान, अनंतर गुरुमाई के दर्शन के लिए साधकों की पंक्तियां बन गईं, पुरुषों और महिलाओं की अलग-अलग। दर्शनार्थी एक ओर से आते थे, दूसरी ओर चले जाते थे। उसमें समय लगता था। गुरुमाई ने मुझसे कहा कि आप लोग भोजन करके यहां आ जाइये। हमने वही किया। विशेष कक्ष में हमें भोजन कराया गया। सब स्वामी लोग भी साथ थे। भोजन करके जब हम हॉल में पहुंचे तो दर्शनार्थियों की कतार अभी चल रही थी। उसके समाप्त होते ही गुरुमाई ने स्वामी सेवानंद से कहा कि वह हम लोगों का परिचय दें। सेवानंद ने मेरा, अन्नदा का और सुधीर का परिचय दिया। सुधीर के बारे में जब उन्होंने कहा कि यह टौरेंटो सेंटर में बहुत काम करता है तो सुधीर ने कहा, "बहुत नहीं, थोड़ा।" इसपर गुरुमाई ने कहा, "थोड़ा नहीं, इतना।" और उन्होंने अपनी दोनों बाहें फैला दीं। गुरुमाई ने यह भी

कहा कि पिता लिखते हैं, पुत्र काम करता है। इसके बाद गुरुमाई ने मुझसे बोलने को कहा। हॉल स्त्री-पुरुषों से भरा था। मैं पंद्रह-बीस मिनट बोला। बार-बार लोगों की तालियों से हॉल गूंज उठता था।

इसके पश्चात जो हुआ, वह आश्चर्यजनक था। गुरुमाई अपने स्थान से उठीं और मुझे, अन्नदा और सुधीर को साथ लेकर अपने कक्ष की ओर बढ़ीं। साधकों की भीड़ दोनों ओर खड़ी थी। बड़े जोर की वर्षा हो रही थी। गुरुमाई बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थीं। नित्यानंद मंदिर के निकट उन्होंने वर्षा की ओर इशारा करके कहा कि मेघराज को देखो, कितने आनंदित हो रहे हैं! फिर वह आगे बढ़ीं। वहां बहुत-से बच्चे खड़े थे। गुरुमाई ने कहा, "अरे, बाबूजी[1] के साथ तस्वीर खिंचवाओ।" उनके इतना कहते ही बच्चे एक ओर को इकट्ठे हो गये। वह स्वयं आ गईं। अन्नदा, सुधीर को भी बुला लिया। चित्र खिंचा। उसके पश्चात मुझे अंक में भरते हुए फिर चित्र खिंचवाया। सैकड़ों साधक खड़े देख रहे थे और खुशी से तालियां बजा रहे थे।

मैंने अपने भाषण में कहा था कि मैं दस बजे सो जाता हूं। अब दस बजने में दो मिनट थे। घड़ी की ओर इशारा करके गुरुमाई ने मुस्कराते हुए कहा, "अब दो मिनट बाकी हैं। अच्छा।" वह दरवाज़ा खोलकर अपने कक्ष में चली गईं। हम लोगों को साधकों ने घेर लिया। बच्चे हस्ताक्षर मांगने लगे। स्वामी सेवानंद ने मुझे बेंच पर बिठा दिया। कुछ साधकों ने मेरे साथ चित्र खिंचवाये। उसके बाद सेवानंद मुझे पुस्तकों के भण्डार में ले गये। बोले, "गुरुमाई ने कहा है कि बाबूजी वहां से जो लेना चाहें, दिलवा दो।" मैंने वहां से गुरुमाई का एक चित्र, रुद्राक्ष की एक माला, दो कैसेट और एक पुस्तक 'सिद्धयोग

१. वह मुझे इसी नाम से संबोधित करती हैं।

दीक्षा' लीं। इस पुस्तक का परिचय मैंने ही लिखा था। उसमें दिल्ली के मॉडर्न स्कूल में दिये गुरुमाई के प्रवचनों का संग्रह था।

हम लोग अपने कमरे में लौटे तो हमारा मन गुरुमाई के स्नेह और सम्वेदनशीलता से भरा था। उनके दुबले-पतले शरीर की अद्भुत क्षमता से भी हमारा मन अत्यन्त प्रभावित था।

रात को अच्छी नींद आई। सबेरे साढ़े चार बजे 'गुरुगीता' के पाठ में सम्मिलित हुए। पाठ के उपरान्त 'श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारी' का बड़ा ही भावपूर्ण कीर्त्तन हुआ। आरती हुई। 'ॐ नमः शिवाय' की धुन और ध्यान। तत्पश्चात जलपान किया। स्वामी सेवानंद मुझे गॉल्फ़ कार से आश्रम की नव-अर्जित सम्पत्ति दिखाने ले गये। आश्रम से कुछ ही दूर पर पहाड़ी स्थान और घना वन उपलब्ध हो गया है। बीच में एक नदी बहती है। उसमें वर्षा के दिनों में पानी गंदा न हो, इसके लिए एक विशेष प्रकार की चादर बिछा दी है। उसी से सटी 'नित्यानंद झील' को भी विकसित किया जा रहा है। वहां की भूमि पर बच्चों के लिए क्रीड़ा-स्थल बनाया जा रहा है। स्त्रियों के लिए अलग व्यवस्था की जा रही है।

यहां के पर्वतों और घने वनों को देखकर मुझे काश्मीर का स्मरण हो आया। प्रकृति ने यहां भी अपना सौंदर्य चारों ओर मुक्त भाव से फैला दिया है, पर काश्मीर से अंतर यह है कि यहां के सौंदर्य को मनुष्य ने संवार दिया है, जिससे इसमें व्यवस्थितता आ गई है। बाद में मैंने गुरुमाई से कहा कि आप काश्मीर से इतनी प्रभावित हैं कि यहां अमरीका के लोगों को भी उसके दर्शन करा रही हैं। गुरुमाई मुस्करा उठीं।

स्वामी सेवानंद ने नवनिर्मित 'शक्ति मंडप' दिखाया। उसे मैं

विनोद के साथ पिछले दिन सबेरे ही देख चुका था। इस मंडप में हज़ारों व्यक्तियों के बैठने का स्थान है। चारों ओर शीशे की दीवारें हैं। इतना विशाल और भव्य मंडप आश्रमों में कम ही देखने में आता है। मंडप का विधिवत उद्‌घाटन हो चुका है, पर उसमें अभी कुछ काम बाकी था। उसके पास ही एक छोटा-सा जलाशय था, जिसमें तीन हँस विचरण कर रहे थे। स्वामी सेवानंद ने दो हँसों की ओर संकेत करके कहा, "यह राधाकृष्ण की जोड़ी है। तीसरे का नाम अभी नहीं रक्खा गया है।" मैंने कहा, "इसका नाम 'अनाम स्वामी' रख दीजिए।" बाद में सेवानंद ने इसकी चर्चा गुरुमाई से की।

हम लोग आश्रम से साढ़े आठ बजे प्रस्थान करने वाले थे। इसकी सूचना गुरुमाई को दे दी गई थी। नाश्ता करके हम 'नमस्ते कक्ष' में आये। गुरुमाई आ चुकी थीं। अन्नदा और सुधीर सामान बांधने कमरे में गये थे। गुरुमाई ने मुझे बुलाया। अपने पास ही एक छोटा सोफ़ा डलवाया और उसपर बैठने के लिए कहा। साधकों की भीड़ वहां पहले से ही जमा हो चुकी थी। अन्नदा और सुधीर भी आ गये। गुरुमाई ने कई साधकों से सवाल किये, कुछ अपरिचितों का परिचय प्राप्त किया। एक अपरिचित से पूछा, "कौन हैं ? कहां से आये हैं ?" उन्होंने बताया कि उनका लड़का आश्रम में है। गुरुमाई हिन्दी में बात कर रही थीं। सेवानंद उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद करते जाते थे। गुरुमाई ने उन भाई से पूछा, "आपको लड़के की याद आती है ?" सेवानंद ने इसका अनुवाद किया, "डू यू रिमेम्बर यौर सन ?" वह भाई चुप रहे। तब गुरुमाई ने अपने प्रश्न का अनुवाद करने के लिए एक बालिका से कहा। उसने अनुवाद किया, "डू यू मिस यौर सन ?" उन भाई ने तत्काल उत्तर दिया, "यस (जी हां।)" इस पर

गुरुमाई ने कहा, "अनुवाद का ठीक-ठीक होना ज़रूरी है।" मुझे पिछले दिन की घटना का स्मरण हो आया, जबकि गुरुमाई ने स्वामी माधवानंद को मीठे शब्दों में झिड़की दी थी और यहां तक कह दिया था कि आलसी आदमी को बाबा मुक्तानंद एक क्षण भी आश्रम में सहन नहीं कर सकते थे। फ़ौरन आश्रम से निकाल देते थे। इससे साफ़ था कि छोटी-से-छोटी चीज़ भी गुरुमाई की निगाह से नहीं बच पाती। इतनी पैनी है उनकी निगाह!

इसके पश्चात गुरुमाई ने कुछ सामान मंगवाया। उसमें से एक शॉल मुझे ओढ़ाने को शर्माजी से कहा। उनके शॉल ओढ़ा देने के बाद एक पूरी बांह का और एक बिना बांह का स्वेटर दिया। फिर बोलीं, "आप लोग तो कैनेडा जा रहे हैं ?" सुधीर के 'हां' कहने पर उन्होंने कहा, "वहां सर्दी होगी। सुधीर को एक कम्बल दो।" अंत में स्वामी हेमानंद ने एक पेन गुरुमाई के हाथ में दे दिया। गुरुमाई हंसते हुए बोलीं, "यह लीजिये। हेमानंद ने पेन पहले से ही लाकर दे दिया।" इतना कहकर उन्होंने वह अत्यन्त मूल्यवान पेन मेरी ओर बढ़ा दिया। उस पर सोने का कैप था। पेन बहुत भारी था। अनंतर उन्होंने एक कापी मेरी ओर बढ़ा दी। मैंने सोचा कि वह चाहती हैं, उस पेन से मैं उस कॉपी में कुछ लिख दूं। मैंने लिखा—

"आई हैव नो वर्ड्स टू एक्सप्रेस माई ग्रेटीट्यूड फॉर ऑल दैट आई हैव रिसीव्ड हीयर. इट इज़ ए ट्रेज़र व्हिच आई विल चेरिश ऑल माई लाइफ़. सद्‌गुरुनाथ महाराज की जय। —यशपाल जैन"

श्री मुक्तानंद आश्रम

साउथ फॉल्सबर्ग.

३ मई १९९२

अर्थात् मुझे यहां जो उपलब्धि हुई है, उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के

लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। यह एक ऐसी निधि है, जिसकी स्मृति मेरे जीवन में सदा बनी रहेगी। —यशपाल जैन

और कॉपी को गुरुमाई की ओर बढ़ा दिया। गुरुमाई ने उसे पढ़ा। मेरी ओर देखा और बोलीं, "यह कॉपी आपके लिए है। आश्रम आने की याद दिलावेगी।" फिर उसमें उन्होंने उस पेन से अपने हाथ से लिखा :

"यू आर ग्रैंडफ़ादर इन विज़डम. दी वर्ल्ड विल ऑलवेज़ बेनीफिट फ़्राम योर प्रैजेन्स ऐण्ड योर कन्ट्रीब्यूशन्स. हैविंग यू हीयर इन साउथ फॉल्सबर्ग वन्स अगेन, ऑफ़ कोर्स विद योर फ़ैमिली टू, हैज़ बीन ए ट्रेमेंडस जॉय। यू ब्रॉट दी मोस्ट एक्सक्यूज़िट वेदर विद यू। सो मच लव इन योर आईज़, इन योर वर्ड्स ऐण्ड ऑलसो इन योर साइलेंस.

यू विल नेवर लीव, दिस इज़ ट्रू.

सद् गुरुनाथ महाराज की जय !

आपकी

स्वामी चिद्‌विलासानंद"

अर्थात्, आप ज्ञान-वृद्ध हैं। आपकी उपस्थिति और उपलब्धियों से दुनिया हमेशा लाभान्वित होती रहेगी। आपका यहां साउथ फॉल्सबर्ग में सपरिवार पुनः आना बड़े ही आनंद की बात है। आप अपने साथ अत्यन्त मनोरम मौसम लाये हैं। आपकी आंखों में, आपके शब्दों में, और आपके मौन में भी कितना प्रेम है! आप चिरजीवी होंगे। यह सच है।

आपकी

स्वामी चिद्‌विलासानंद"

उसे मेरी ओर बढ़ाते हुए बोलीं, "इसपर तारीख़ नहीं डाली, जिससे समय ध्यान न रहे।" मैंने अपने पिछले दिन के भाषण में कहा था कि बाबा के सम्पर्क में कब आया, समय का मुझे पूरा स्मरण

नहीं। संभवतः गुरुमाई ने उसी को लक्ष्य में रखकर यह कहा होगा।

मुझे अपने जीवन में बहुत सम्मान मिला है, पर यह सम्मान तो अभूतपूर्व था। आध्यात्मिक जगत की एक महान विभूति से इतना आदर मिला, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। मुझे याद आया कि यहीं आश्रम में एक दिन मैं बाबा के कमरे में चला गया था। बाबा दत्तचित्त होकर कुछ लिख रहे थे। उनकी निगाह मेरी ओर गई तो उन्होंने एकदम पेन बंद करके मेरी ओर बढ़ा दिया। बोले, "अब आप इससे लिखिये।" इसी प्रकार गुरुमाई जब पिछली बार दिल्ली आई थीं तो मुझे एक पार्कर पेन दिलवा गई थीं। सच यह है कि बाबा लेखकों, कलाकारों, संगीतज्ञों आदि के प्रति विशेष अनुराग रखते थे और गुरुमाई भी उसी प्रकार की भावना रखती हैं। उनके गणेशपुरी आश्रम में और साउथ फॉल्सबर्ग में भी, संत पुरुषों के अतिरिक्त कलाकार बराबर आते रहते हैं।

अन्नदा के हाथ में गुरुमाई ने बड़े प्रेम से ब्रैसलेट पहनाई। सुधीर के लिए कहा, "अबतक बहुत कम लोग इसे जानते थे। अब यह मशहूर हो गया है।"

हम सब तो अभिभूत थे ही, उपस्थित लोग भी प्रेम से विह्वल हो रहे थे। गुरुमाई ने तभी मुस्कराते हुए कहा, "आप लोग आठ बजे जाने वाले थे। अब साढ़े आठ बज चुके हैं।" सुधीर बोला, "आठ बजे नहीं, साढ़े आठ बजे जाना था।"

गुरुमाई का चेहरा आध्यात्मिक तेज से दीप्त हो रहा था, उनकी आंखें प्रेम से चमक रही थीं। अंतर आत्मीय भाव से भरा था। मैंने जब उनसे विदा ली तो उन्होंने मुझे सीने से लगा लिया। मेरी आंखों में आंसू आ गये। मैंने पिछले दिन अपने भाषण में कहा था, "कल

सबेरे हम लोग यहां से चले जायंगे, पर हमारे हृदय यहीं रह जायंगे।" सचमुच, हमारे हृदय वहीं छूट रहे थे।

आगे टौरेंटो तक का कार से लगभग बारह घंटे का सफर था। गुरुमाई ने रास्ते के लिए खाना-फल आदि इतने रखवा दिये कि वे बाद में भी काम आये।

स्वामी सेवानंद, स्वामी माधवानंद, स्वामी हेमानंद आदि साधुओं तथा प्रायः सभी परिचित बहनों और भाइयों ने हमें आश्रम से विदाई दी। स्वामी माधवानंदजी ने यात्रा की मंगलकामना के प्रतीक रूप में नारियल फोड़ा। सबके दिल भरे थे। सेवानंद कह रहे थे, "फिर आइये।" वह क्या, आश्रम का सम्पूर्ण वातावरण ही बार-बार आने का निमंत्रण दे रहा था। आकाश से इंद्रदेव अपने आनंद की वर्षा कर रहे थे। जब चले, उस समय भी थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही थी।

१४/नियाग्रा प्रपात पर

साउथ फॉल्सबर्ग से टौरेंटो लगभग सात सौ किलोमीटर है। सारे रास्ते मौसम बड़ा सुहावना रहा। आश्रम से चलने के थोड़ी देर बाद पानी पड़ना बंद हो गया, किन्तु बादल अधिकांश रास्ते घिरे रहे। मार्ग के दोनों ओर हरियाली ग़ज़ब की थी। इस बारे में अमरीका और कैनेडा दोनों देश अद्भुत हैं। मानव ने प्रकृति को एकदम अपने वश

में कर लिया है। विस्मय होता है कि हज़ारों मील की भूमि को यहां के शासकों ने किस प्रकार इतना सुन्दर और आकर्षक बना दिया है ! सुन्दर तो दिल्ली को भी बनाया गया था, लेकिन हुआ क्या? एक ओर फव्वारे चलते थे, दूसरी ओर लोग उन्हीं के किनारे पान की पीक थूकते थे, चाट के दोने पटकते थे, सिगरेट के ख़ाली डिब्बे और दियासलाइयों के ख़ाली बक्से यहां-वहां डालते थे। सौन्दर्य की रक्षा के लिए लोक-शिक्षण आवश्यक है, जिसका हमारे देश में नितान्त अभांव है।

गुरुमाई ने खाने-पीने की पूरी व्यवस्था करवा दी थी। एक जगह रुककर खाना खाया। फल खाये। 'ॐ नमः शिवाय' का कैसेट सुनते रहे। सुधीर अपने साथ आश्रम के संकीर्त्तन आदि के अनेक कैसेट ले गया था। कुछ आश्रम से लाया था। उन्हें सुनते हुए हम लोग नियाग्रा प्रपात पर पहुंचे। वहां हमारे पासपोर्ट देखे गये। अब हमें कैनेडा में प्रवेश करना था। मुझे बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ, जब हमें इमीग्रेशन और कस्टम में पांच मिनट भीं नहीं लगे। एक बड़ा सुन्दर युवक मुस्कराते हुए सारी ख़ाना-पूरी कर रहा था। उसने मेरी, अन्नदा और सुधीर की ओर बड़े स्नेह से देखा और अन्नदा और मेरे पासपोर्टों पर प्रवेश की मोहर लगा दी। नियाग्रा प्रपात कैनेडा में है।

यह प्रपात सारे विश्व में विख्यात है। हम लोग पहली बार सन् १९७२ में वहां गये थे। नियाग्रा नदी का चौड़ा पाट जिस प्रकार यहां अपनी वेगवती धारा से प्रपात का निर्माण करता है, उसे देखकर भय-मिश्रित आनंद की अनुभूति होती है। ऊपर से नीचे तक एक लिफ्ट की व्यवस्था की गई है, जिससे लोग बरसाती ओढ़कर नीचे चले जाते हैं और जल-धारा तथा दीवार के बीच में खड़े हो जाते

हैं। हमारे ऊपर से पानी की विशाल धारा प्रवाहित होती रहती है और हम उसके नीचे बिना ख़तरे के कान फोड़ने वाले शोर के बीच निडर होकर खड़े रहते हैं। कभी-कभी पानी की फुहारें हमारे आनन्द में और वृद्धि कर देती हैं। बीस वर्ष पहले हम लोगों ने उस विलक्षण आनंद का स्वाद लिया था। मत्स्यालय में डालफिनों के करतब देखे थे, तरह-तरह की चीज़ों का संग्रहालय देखा था और देखे थे तरह-तरह के पेड़-पौधे, सैलानियों की अपार भीड़, प्रेम से झूमते युवक-युवतियां, देश-देश के लोग। नीचे विशाल जलाशय में घूमती नावों को देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। लगता था, भंवर में नाव उलट जायेगी, पर आज तक कभी ऐसा हुआ नहीं। बरसातियों में अपने को समेटे पानी के थपेड़ों के बीच नावों के ऊपर-नीचे जाने की अनुभूति निराली थी, पर डर नहीं लगता। यात्री आश्वस्त रहते हैं कि नाव डूबेगी नहीं। प्रपात से लेकर नदी के किनारे-किनारे एक पक्की पांच-छः फुट ऊंची चहारदीवारी लगा दी गई है, जिसके सहारे खड़े होकर पर्यटक प्रपात की शोभा को देखते हैं। कई घंटे तक हम लोग वहां घूमते रहे थे और प्रपात के साथ-साथ वहां के बाग़-बग़ीचों का भी आनंद लेते रहे थे।

प्रपात के नज़दीक ही एक ऊंची मीनार बनाई गई है, जिस पर घूमता रेस्तरां है। आप अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे चारों ओर के दृश्य देख लीजिए। उसी के निकट नाना प्रकार के रंगों की फ्लड लाइट की व्यवस्था है। बिजली के उस प्रकाश की किरणें सीधी जल-धारा पर पड़ती हैं। रंग बदलते हैं और दर्शक मानो किसी परीलोक में पहुंच जाते हैं। रात के समय प्रपात को देखने का अपना आनंद है। सुधीर ने एक बार रात को वहीं रहने की व्यवस्था की थी। उन दृश्यों की

आभा आज भी मन पर छाई है।

नियाग्रा के पास ही अमरीका की सीमा में एक छोटा प्रपात है, अमरीकी प्रपात। ईरी नदी ने वहां एक लघु द्वीप की रचना की है और फिर आगे नियाग्रा नदी में अपने को विसर्जित कर दिया है। उसीने एक प्रपात का रूप ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार कैनेडा और अमरीका, दोनों पर्यटकों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, लेकिन विराट प्रपात का जो रोमांच है, वह लघु प्रपात का कहां ! अमरीकी प्रपात के समीप ही नियाग्रा नदी पर एक विशाल पुल बनाया गया है, जिस पर होकर कैनेडा से अमरीका और अमरीका से कैनेडा में प्रवेश करते हैं। वहीं पर अमरीका की बफ़ेलो नगरी है।

इस प्रपात का इतना आकर्षण था कि हम अपने कैनेडा और अमरीका के तीनों प्रवासों में वहां गये। इस बार भी कैनेडा जाते हुए हम नियाग्रा प्रपात की अवहेलना नहीं कर सकते थे। लगभग दो घंटे वहां रुके। इस बार का आनंद ही कुछ और था। हम तो वहां यह मानकर पहुंचे थे कि गर्मी का मौसम है तो गर्मी होगी, पर वहां दिसम्बर-जनवरी का-सा जाड़ा था। गर्मी के कपड़ों में हम लोग मारे सर्दी के कांप रहे थे। मज़े की बात यह कि प्रकृति का दोहरा प्रकोप हो रहा था। सर्दी के साथ-साथ वर्षा भी हो रही थी। पानी से बचाव के लिए तो हमारे पास छाता था, पर सर्दी से बचाव के लिए हमारे पास कुछ नहीं था। सुधीर कार पार्क करने के लिए जगह खोजने लगा, अन्नदा और मैं प्रपात के किनारे घूमने लगे। सर्दी से दांत किटकिटाने लगे तो हम पास की इमारत में चले गये, जहां विभिन्न प्रकार के सामान की और खाने-पीने की चीज़ों की दुकानें थीं। गाड़ी को पार्क करके सुधीर भी वहीं आ गया। हम लोग थोड़ी देर तक

साथ-साथ घूमे और फिर गाड़ी में आ गये। तय किया कि कार में बैठकर ही वहां का चक्कर लगाया जाय। वही किया। खाने की चीज़ें साथ थीं ही, कार को रोककर एक जगह खड़ा किया और मज़े में चाय पी, जलपान किया।

वर्षा थम गई थी, पर सर्दी में कोई कमी नहीं आई थी। अन्नदा और सुधीर ने दुकान पर जाकर कुछ सामान ख़रीदा और सवा सात बजे वहां से रवाना हो गये। यहां कैनेडा और अमरीका में रात बड़ी देर में होती है। सूरज क़रीब साढ़े आठ बजे छिपता है और साढ़े पांच बजे निकल आता है। हम लोग रवाना हुए उस समय आसमान साफ़ था और सूरज की रोशनी चारों ओर फैली थी। नियाग्रा प्रपात से घंटे-सवा घंटे का रास्ता था। हम लोग बड़े आनंद से साढ़े आठ बजे टौरेंटो पहुंच गये। बहुत समय बाद पुत्र-वधू मीरा और पौत्र विवेक तथा विनीत मिले। बड़ा अच्छा लगा।

१५/वाह री कैलाबोगी !

सुधीर और उसकी पत्नी आर० सी० आई० (रिजौर्ट कन्डोमियन इनकारपोरेटेड) के सदस्य हैं। इस संस्थान ने विश्व के विभिन्न देशों में अपने सदस्यों के रहने के लिए अच्छे, आरामदेह, आवास बनवा रक्खे हैं। इन आवासों में से कहीं भी सदस्य सात दिन तक जाकर बिना कुछ दिये रह सकते हैं। वहां बर्त्तन, बिस्तर, बिजली, पानी आदि

सूरीनाम में प्रवासी भारतीयों के आगमन का स्मारक

स्मारक पर भारतीय प्रतिनिधि मंडल. (बायें से): सर्वश्री राजेन्द्र अवस्थी, यशपाल जैन, माजदा असद और शंकर दयाल सिंह

पारामारीबो में
गांधीजी
की प्रतिमा

सूरीनाम में कृष्ण मंदिर

सूरीनाम के विभिन्न दृश्य

सूरीनाम में 'अमर इंडियन' महिला

पोर्ट आफ स्पेन में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन

सम्मेलन के कुछ प्रतिनिधि

पोर्ट ऑफ़ स्पेन के सागर-तट पर

आतिथेय अमीर ईदू दम्पत्ति के साथ राजेन्द्र अवस्थी और यशपाल जैन

ट्रिनिडाड का एक ऐतिहासिक स्थल

ट्रिनिडाड का एक सरकारी भवन

बाबा मुक्तानन्द आश्रम में गुरुमाई के साथ यशपाल जैन

आश्रम में गुरुमाई तथा बच्चों के बीच

आश्रम में (बायें से): अन्नदा पाटनी, गुरुमाई यशपाल जैन और सुधीर जैन

आश्रम में साधकों से चर्चा

आश्रम में साधकों के बीच

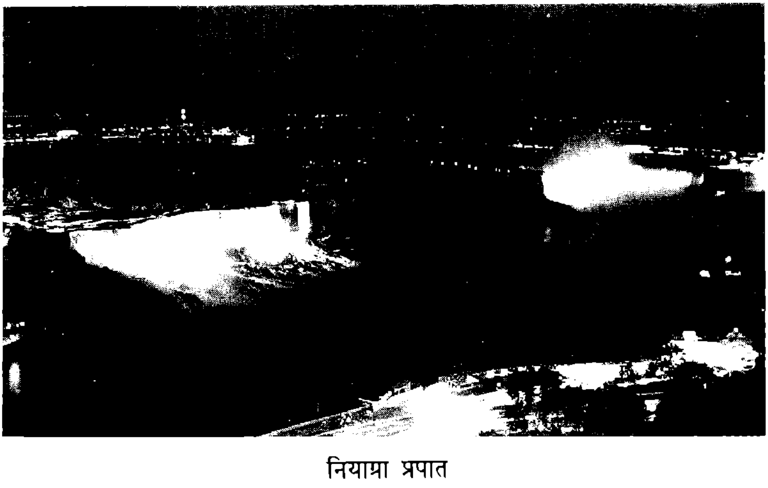

नियाग्रा प्रपात

प्रपात पर यशपाल जैन, पुत्र सुधीर और पुत्री अन्नदा के साथ

टौरेंटो का जैन सेंटर

लेखक परिवार के बीच (बायें से) अन्नदा पाटनी, लेखक, पौत्र विनीत, पुत्रवधू मीरा जैन, पौत्र विवेक और पुत्र सुधीर जैन

ओटवा के विख्यात गैटिनो पार्क में लेखक पुत्री के साथ

केलाबोगी झील में लेखक पुत्री के साथ

'एपकोट' सेन्टर

'सी-वर्ल्ड' केन्द्र में दौहित्र पराग पाटनी अपनी पत्नी शिल्पी के साथ

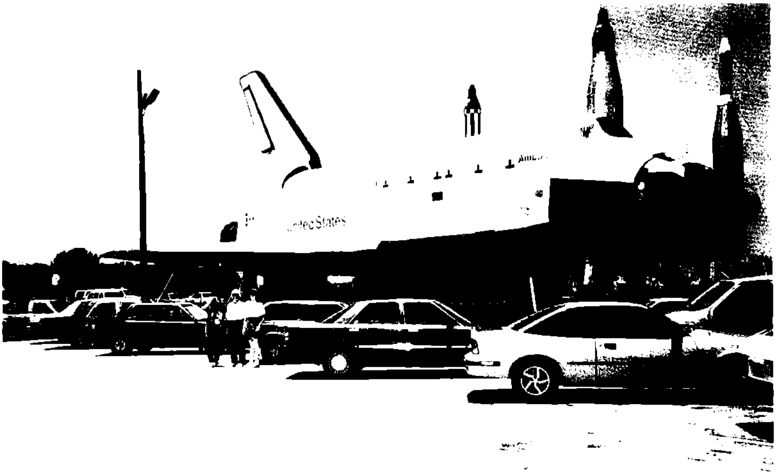

'कैनेडी स्पेस सेंटर'

विश्वविख्यात
डिज़नी
वर्ल्ड की झांकी

द्यूत नगरी अटलांटिक सिटी का विख्यात जुआघर

बॉल्टीमोर में (बायें से) अन्नदा पाटनी, डा. कमल, लेखक तथा डा. मिश्रीलाल जैन

वर्जीनिया की
विख्यात
लूरे कन्दरा में

लूरे कन्दरा के बाहर का दृश्य

वर्जीनिया की
विख्यात
लूरे कन्दरा में

लूरे कन्दरा के बाहर का दृश्य

पैट्रिक पर्वतमाला, घना जंगल, विशाल झील और एकान्त। नैनीताल की याद ताज़ी हो गई। जिस प्रकार लोको में अधिक चले रेल के इंजन की मरम्मत हो जाती है, उसी प्रकार ऐसे स्थानों पर कुछ समय रहने से तन-मन की थकान दूर हो जाती है। वही हमारे साथ हुआ।

कैनेडा और अमरीका में भारत की तरह दुकानें नहीं हैं। बाज़ार हैं, किन्तु साथ ही जगह-जगह पर दुकानों के समूह हैं, जिन्हें 'मॉल' कहते हैं। वहां सब चीज़ें मिल जाती हैं। यहां कैलाबोगी में भी दो मॉल थे। सुधीर वहां जाकर साग-सब्जी आदि ले आया। खाना बना, खाया, फिर थोड़ी देर झील के किनारे घूमते रहे।

अगले दिन सवेरे उठे तो आकाश निर्मल था और सुहावनी धूप से झील का पानी चमक कर अपनी छटा प्रकट कर रहा था। हम लोग आराम से उठे। झील से एकदम सटी दो कॉटेज और थीं। उनमें से एक पर सुधीर की निगाह थी। वह आज सवेरे खाली हो गई तो हम लोग उसमें चले गये। सवेरे नाश्ता करके सुधीर दफ्तर से सुरक्षा-जाकेट ले आया और हम तीन पैडल बोट लेकर झील में चक्कर लगाने निकले। इन बोटों (नावों) में पैडल लगे होते हैं। दो-दो आदमी बैठकर साईकिल की तरह पैडल चलाते हुए नाव को कहीं तक ले जा सकते हैं। हमने इन बोटों से झील की ख़ूब सैर की। झील के उस किनारे पर नाव को रखने के लिए एक कोठरी बनी थी। उसका दरवाजा सफेद था। इस किनारे से देखने पर वह 'शिव मंदिर' जैसा लगता था। मैंने वही उसका नाम रख दिया। एक दिन अपनी नाव को सुधीर और मैं वहां तक ले गये। बड़ा आनंद आया। किनारे के पेड़-पौधों और लताओं का प्रतिबिम्ब झील के पारदर्शी जल में देखकर ऐसा लगता था, मानो झील के भीतर भी बाहर की तरह एक दुनिया

है।

झील के इस किनारे पर पानी से सटे दो पेड़ थे, जो मौन तपस्वी की भांति खड़े दिखाई देते थे। लगुन पक्षी का मधुर स्वर सुनाई देता था। एक दिन बड़े तड़के उठकर सुधीर और मैं सड़क पर दूर तक घूमने चले गये। रास्ते में एक सांप का लम्बा टुकड़ा पड़ा था। सुधीर ने कहा, ऐसे स्थानों पर सांप निकलते हैं और कभी-कभी तेज़ी से दौड़ती कारों की चपेट में आ जाते हैं। आख़िर जंगल में सांप नहीं होंगे तो कहां होंगे!

खाने और बैठने के कमरे में सुधीर ने गुरुमाई का चित्र रखकर पूजा का स्थान बना लिया था। हम लोग सबेरे या शाम को जब भी सुविधा होती, 'ॐ नमः शिवाय', 'आरती' आदि का कैसेट लगाकर पूजा करते। बड़ा अच्छा लगता। कैनेडा और अमरीका में 'मातृ दिवस' और 'पितृ दिवस' मनाने की प्रथा है। उस दिन बच्चे उपहार लाकर माता-पिता को देते हैं। एक दिन 'मातृ-दिवस' पड़ा। मैंने उस दिवस को मनाने का महत्व बताते हुए बच्चों को समझाया कि भारतीय जीवन में कहा गया है—'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव' अर्थात् माता-पिता देव के समान हैं, उनका आदर करो।

कुछ घंटों के लिए अन्नदा के देवर डॉक्टर नवीन पाटनी औटवा से सपत्नीक आ गये। औटवा वहां से कुल पचास किलोमीटर था।

हम लोग ८ मई से १२ मई तक वहां रहे। वहां की प्राकृतिक छटा, पर्वतीय दृश्य, सघन वन, विशाल झील, ऊंचे-ऊंचे पेड़, शान्त वातावरण, झील में पैडल बोट द्वारा दिन में कई-कई बार घूमना, लगुन पक्षी की टेर आदि-आदि तो मन में बसे ही, दो घटनाओं ने उस प्रवास को और भी स्मरणीय बना दिया। एक दिन हम लोग मॉल में कुछ

सामान खरीदने गये। कुरता-धोती पहने मैं भी सुधीर के साथ था। मिठाई के काउण्टर पर अधेड़ उम्र का एक आदमी और एक महिला थीं। मेरे कपड़ों को उन्होंने जिज्ञासु भाव से देखा तो सुधीर ने कहा कि यह मेरे पिता गांधी-विचार के हैं। अब तो उन दोनों की उत्सुकता और बढ़ गई। उन्होंने कहा, "गांधी महापुरुष थे। उनमें बहुत प्रेम था। वह सारी दुनिया का भला चाहते थे।" बात करते-करते सुधीर की निगाह चॉकलेट की किसी मिठाई पर गई। उसने वह मिठाई देने को कहा। उन्होंने मिठाई दे दी। सुधीर ने उसका दाम पूछा तो वे बोले, "नहीं, हम इसकी कीमत नहीं लेंगे।" सुधीर ने कहा, "यह नहीं हो सकता। आपको पैसे लेने ही होंगे।" बड़ी मुश्किल से वे पैसे लेने को राज़ी हुए। मैंने अनुभव किया कि गांधीजी के प्रति संसार में आज भी कितनी श्रद्धा है!

एक दूसरे मॉल में सुधीर ने टमाटर के जूस (रस) का डिब्बा खोजा। एक छोटा डिब्बा मिला। सुधीर ने काउण्टर पर खड़ी महिला से पूछा कि क्या बड़ा डिब्बा मिल सकता है ? वह महिला सपाटे से गई और बड़ा डिब्बा लाकर हमारे सामने रख दिया। सुधीर ने कहा, ठीक है। दे दें। पर उस सदाशयी महिला ने उस बड़े डिब्बे के वही दाम लगाये, जो छोटे डिब्बे के थे।

अपने देश के अधिकांश पहाड़ी स्थानों को देखने का मुझे अवसर मिला है, पर कैलाबोगी की मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप पड़ी। हम अनिच्छा-पूर्वक वहां गये थे, पर वहां से चलते समय लग रहा था कि यदि कुछ दिन वहां और रह लेते तो कितना अच्छा होता!

निर्मल झील, सघन वन, ऊंचे पर्वत,
नील गगन, स्वर्णिम प्रभात—

ये सब मुझको बेहद भाते हैं,
इसीलिए तो कैलाबोगी के परिदृश्य मनोरम
बहुत याद अब भी आते हैं।

१६/कैनेडा में

हम लोग कैनेडा ३ मई को पहुंचे थे। २७ मई तक उस देश में रहे। ३ से ७ तक टौरेंटो में, ८ से १२ तक कैलाबोगी में, १३ से २३ तक फिर टौरेंटो में और २३ से २७ तक औटवा में। कैनेडा हम लोग तीन बार हो आये थे, उसके विभिन्न नगरों में खूब घूमे थे और वहां के प्रायः सभी दर्शनीय स्थल देख चुके थे। अतः अब इधर-उधर जाने की विशेष इच्छा नहीं थी, फिर भी कैलाबोगी और औटवा गये तथा टौरेंटो में काफ़ी घूमे। टौरेंटो सेंटर, पिकरिंग सेंटर और मौंटीन सेंटर में गुरुमाई के आश्रम-केन्द्र हैं। उन केन्द्रों में हमें आमंत्रित किया गया। पहले दो केन्द्रों में मैं बोला। पहले में सुधीर ने मेरा परिचय दिया। अन्नदा भी बोली। पिकरिंग और मौंटीन सेंटर में गणेशपुरी आश्रम के वैंकप्पा तथा उनके कुछ और साथी आ गये थे। वैंकप्पा का भाषण हुआ। वह हिन्दी में बोले। उसका अंग्रेज़ी रूपान्तर वाणी ने किया। इन केन्द्रों में सीमित समय में जो कार्यक्रम हुए, संकीर्त्तन आदि, वे तो प्रभावशाली थे ही, सबसे बड़ी बात लोगों की आत्मीयता थी। वे बांहें फैलाकर ऐसे मिलते थे, मानो मां-जाये भाई-बहन हों।

मेरे पासपोर्ट की मियाद अक्तूबर १६६२ तक थी। टौरेंटो शहर जाकर भारतीय वाइस कौंसल पी० एस० गोसाईं से मिले। बड़े प्रेम से मिले। उन्होंने मेरा पासपोर्ट पांच वर्ष के लिए बढ़वा दिया। इतना ही नहीं, अपने एक मित्र दीपू धर्मचंद से, जो अमरीकी दूतावास में काम करते थे, कहकर मेरा और अन्नदा का अमरीकी वीज़ा पांच वर्ष का करा दिया। हम लोगों ने दीपू धर्मचंद से जब अमरीकी दूतावास में भेंट की तो वह इस प्रकार मिले जैसे हम लोग पहले से ही एक-दूसरे से परिचित हों। दीपू ट्रिनीडाड के थे और मेरा नाम जानते थे। अपने दफ्तर के भीतरी कक्ष से बाहर निकलकर आये और बड़ी भावना से मिले।

अमरीकी दूतावास का ही एक कैनेडियन कर्मचारी मुझे कभी नहीं भूलेगा। हमारे वीज़ा के लिए चित्रों की आवश्यकता थी। उसने तत्काल वहीं उनकी व्यवस्था करवा दी। वह बहुत देर तक मुझसे बातें करता रहा। उसने कहा, "देखिये, यहां माता-पिता अपने बच्चों की ओर ध्यान नहीं देते। बच्चे पढ़ाई में रस नहीं लेते, टी० वी० देखते हैं, माता-पिता का आदर नहीं करते। मेरे तीन बच्चे हैं। मैंने शुरू से ही उन्हें बड़ों का आदर करना सिखाया है, टी० वी का समय बांध दिया है और पढ़ाई में उनकी मदद करता हूं।" उनकी सराहना करते हुए जब मैंने उनकी पीठ थपथपाई तो उनकी आंखें चमक आईं। विह्वल स्वर में बोले, "परिवार के लोगों में प्यार न हो और एक-दूसरे के लिए आदर न हो, बच्चे बेकाबू हों तो ज़िन्दगी का मजा क्या है?"

कार्यालय का समय समाप्त हो गया था। सारे कर्मचारी जा चुके थे, पर वह भाई हमें विदा करके ही गया।

सुधीर ने अपने घर में एक मंदिर बना रक्खा है। इस मंदिर में

वह कार्यक्रम तो बाबा मुक्तानंद आश्रम का चलाता है, पर मूर्त्तियां तथा चित्र उसमें अधिकांश धर्मों के हैं। महावीर और बुद्ध की मूर्त्तियां हैं, और शिवपिण्डी है, सरस्वती, हनुमान, बाबा नित्यानंद, मुक्तानंद, गुरुमाई आदि के चित्र हैं। एक चित्र उसकी दिवंगत माताजी का भी है। इस मंदिर में वह धूप-दीप जलाकर नित्य नियम से सबेरे आधा घंटा, सात से साढ़े सात बजे तक, पूजा करता है। छुट्टी के दिन कभी-कभी पूजा का क्रम कुछ अधिक समय तक चलता है। पूजा का समापन इस मंत्र से होता है :

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णातपूर्ण मुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।"

(अर्थात्, पूर्ण है यह, पूर्ण है वह, पूर्ण से निष्पन्न होता पूर्ण है। पूर्ण में से पूर्ण को यदि दें निकाल, शेष फिर भी पूर्ण ही रहता सदा।)

बीच में णमोकार मंत्र का भी दैनिक पाठ करता है। 'गुरुगीता' और 'हनुमान चालीसा' के दिन बंधे हैं।

मैं इस पूजा-प्रार्थना में रोज़ शामिल होता था। अच्छा लगता था। भारतीय संस्कृति में धर्म को इसलिए महत्व दिया है कि वह जीवन को धारण करता है। धर्म का व्यापक अर्थ है प्रेम, जिसके लिए मन, वचन और कर्म की निर्मलता चाहिए। पूजा उसमें सहायक होती है।

सुधीर के घर के पीछे के भाग में साग-भाजी और फूल के पौधे उगाने के लिए काफ़ी जगह है। वहां के लिए खाद और पौधे लाये, लगाये। घर के सामने और पीछे लॉन (घास) लगाने की व्यवस्था है। सुधीर ने एक आदमी को बुलाकर ज़मीन को खुदवाया, घास का कालीन बिछवाया। यहां कैनेडा और अमरीका में हरी घास के कालीन मिलते हैं। उन्हें स्थान के हिसाब से काटकर ज़मीन पर बिछा दिया

जाता है। कुछ ही समय में घास की जड़ें नीचे ज़मीन में फैल जाती हैं और मज़ेदार लॉन पक्के तौर पर जम जाती है। हम लोग कई दिन तक घास में पाइप से पानी लगाते रहे और फूल-पौधों तथा साग-भाजियों को सींचते रहे। इस शरीर-श्रम से गांधीजी तथा गुरुमाई की याद आती रही। शरीर की मेहनत पर उनका सदा जोर रहा है।

मेरी पौत्री मौनिका (सुधीर की लड़की), जो वैंकूवर में रहती और काम करती है, हम लोगों से मिलने टौरेंटो आ गई। सन् १९८७ में जब हम कैनेडा गये थे, वह नहीं आ सकी थी। कुशाग्र बुद्धि की लड़की है। वह तीन दिन रहकर चली गई। मेरे पौत्र विवेक और विनीत भी पढ़ने में तेज़ हैं। वे दोनों अभी टौरेंटो में पढ़ते हैं।

टौरेंटो में भारतीय काफ़ी संख्या में हैं। उन्होंने अपने-अपने धर्म के मंदिर, गुरुद्वारे, मस्जिद, गिरजा आदि बना रक्खे हैं। पिछली बार हम लोग विष्णु मंदिर गये थे, ज़ो नया बना था और जहां मुरारी बापू का प्रवचन हुआ था। इस बार भी वहां गये। उसके निकट ही महात्मा गांधी की एक विशाल प्रतिमा स्थापित की गई है। यंग स्ट्रीट पर स्थापित यह प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ है। टौरेंटो में ही 'हरे कृष्ण' वालों का विशाल मंदिर है, 'हिन्दू प्रार्थना समाज' है। 'हिन्दू प्रार्थना समाज' के सर्वधर्म समभाव के पोषक मंदिर के निर्माण के पीछे मेरी भी कुछ प्रेरणा रही। सन् १९७२ में जब मैं कैनेडा गया था, उन्होंने मुझे अपनी संस्था में बुलाया था। उस समय उनका कोई मंदिर नहीं था। एक गिरजे में यीशु की प्रतिमा पर कपड़ा डाल कर वे राम, सीता, कृष्ण, हनुमान आदि के चित्र रखकर अपना कार्यक्रम करते थे। उसे देखकर मैंने उनसे कहा, "आप लोग इतने दिनों से अपनी संस्था चला रहे हैं और अपना मंदिर नहीं है! यह बड़ी लज्जा की बात है। आपका

अपना मंदिर होना ही चाहिए।" मेरी बात उनको लग गई। उन्होंने अपने मंदिर की व्यवस्था की। उसके बाद जब मैं कैनेडा गया तो वे मुझे बड़े उल्लास से अपने मंदिर में ले गये। फिर उन्होंने अपनी संस्था का रजत-जयंती महोत्सव मनाया तो उनके विशेष आग्रह पर मैंने 'डालमिया ट्रस्ट' से कहकर पांच सौ प्रतियां 'रामचरित मानस' की और पांच सौ प्रतियां 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' की भेंट-स्वरूप भिजवाईं। इस बार मुझे वहां जाने का समय नहीं मिला, लेकिन संस्था के संस्थापक कृपाराम सब्बरवाल सपत्नीक मुझसे मिलने आये और कई घंटे साथ रहे। साथ ही भोजन किया। पति-पत्नी दोनों ही बड़े सरल और सेवाभावी हैं। सुधीर के दो निकटस्थ परिवारों (बलराम और सुधा तथा रवीन्द्र और मौनी) ने अपने यहां भोजन करने बुलाया। दोनों ही परिवार बड़े मिलनसार हैं। कुछ समय 'जैन सेंटर' में व्यतीत किया। वहां मंदिर में महावीर और शांतिनाथ आदि की प्रतिमाएं हैं, पर मंदिर अभी पूरी तरह तैयार नहीं हो पाया है। सुधीर का नया घर, जो बन रहा है, दो बार देखा।

एक दिन बड़ी रोचक तथा मनोरंजक घटना हुई। सुधीर हमें टौरेंटो के 'ओलिव गार्डन रेस्तरां' में भोजन कराने ले गया। बड़ा अच्छा खाना मिला। भोजन के अंत में रेस्तरां के सारे कर्मचारी ताली बजाते हुए हमारी मेज़ की ओर आये। वहां जितने लोग भोजन कर रहे थे, सब हमारी ओर देखने लगे। मुझे लगा, रेस्तरां के कर्मचारी हड़ताल कर रहे हैं और ताली बजाकर लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच रहे हैं। पर उसी समय एक कर्मचारी ने 'बर्थडे केक' (वर्षगांठ की केक) मेरे सामने लाकर रख दी। तब मैं समझा कि माजरा क्या है। असल में सुधीर खाने के बीच से उठकर चुपचाप उन लोगों से

कह आया था कि आज मेरे पिताजी की सालगिरह है। आनंद के लिए ऐसा वहां पर लोग प्रायः किया करते हैं। पर मुझे इसकी जानकारी नहीं थी। उन लोगों के चले जाने पर जब मैंने हड़ताल वाली बात कही तो हमारी टोली के सब लोग हंसी से लोटपोट हो गये।

हम लोग उन्नीस दिन कैलाबोगी और टौरेंटो में रहे। २३ अप्रैल को सुधीर कार से मुझे और अन्नदा को औटवा ले गया। सबेरे साढ़े नौ बजे रवाना हुए। चले तब बड़ी गर्मी थी, पर जब औटवा के निकट पहुंचे तो ज़ोर की वर्षा आ गई। लगभग पांच सौ किलोमीटर का सफ़र था। शाम को साढ़े तीन बजे वहां पहुंचे। मेरी बेटी अन्नदा के देवर डॉक्टर नवीन पाटनी सपरिवार वहां रहते हैं। सीधे उनके घर गये।

औटवा में हम २३ मई से २६ मई तक रहे। इन दिनों में अधिकांशतः वहां बादल छाये रहे और बीच-बीच में वर्षा होती रही। फिर भी नवीन हमें बराबर घुमाते रहे। औटवा कैनेडा की राजधानी है और टौरेंटो वहां की उद्योग नगरी है। दोनों का ही अपना-अपना महत्व है। पिछली यात्राओं में नवीन ने हमें वहां के न केवल दर्शनीय स्थल दिखाये, अपितु संसद के अधिवेशन में भी ले गये। उन दिनों ट्रूडो वहां के प्रधान मंत्री थे। संसद में सरकारी और विपक्षी सदस्यों की खींचतान देखकर मुझे अपने यहां की संसद की याद हो आई थी। संसद भवन को हम अच्छी तरह देख चुके थे। उस भव्य प्रांगण के सभी भवन देखे थे। उन्हें दिखाते हुए जब गाइड पुस्तकालय में ले गई तो उसने बताया कि एक बार जब यहां बड़े जोर की आग लगी थी, यह पुस्तकालय सुरक्षित रह गया था। मेरी पत्नी आदर्श साथ थीं। उन्होंने विनोद में कहा था, "आग पढ़ना नहीं जानती,

इसलिए यहां नहीं आई होगी।" सारी टोली इस पर हंस पड़ी थी।

नवीन ने लगभग दो सप्ताह की छुट्टी ले ली थी। उनका विचार था कि चार-पांच दिन औटवा में बिताकर कार से वाशिंगटन आवें और वहां से पराग और शिल्पी को साथ लेकर सब एक सप्ताह के लिए फ्लोरिडा चलें। वह फ्लोरिडा कई बार हो आये थे और उसकी दर्शनीय चीजों से बहुत प्रभावित थे। लेकिन कुछ पारिवारिक कारणों से फ्लोरिडा की यात्रा कुछ दिनों के लिए स्थगित कर देनी पड़ी। यह तब हुआ जबकि हम लोग कार द्वारा वाशिंगटन आ गये।

औटवा के दिनों में जब भी मौसम खुलता, हम लोग घूमने निकल जाते। शहर के वे सब भवन नवीन ने एक बार फिर दिखा दिये, जिन्हें हम पहले देख चुके थे। पर इस बार की गेंटीनो पार्क की यात्रा कभी नहीं भूलेगी। पांच सौ अड़सठ एकड़ में फैला यह पार्क अर्द्धशताब्दी तक वहां के प्रधानमंत्री विलियम लिओन मैंकेंज़ी का ग्रीष्मकालीन आवास रहा और जब सन् १९५० में उसकी मृत्यु हुई तो उसके बाद उसे राष्ट्र को समर्पित कर दिया गया। वस्तुतः वह फूल-पौधों का पार्क नहीं है, सघन वन है। पक्की सड़क के दोनों ओर दूर-दूर तक नाना प्रकार के ऊंचे वृक्ष हैं। हमें बताया गया कि बहुत-से वृक्षों के पत्तों का रंग मौसम के अनुसार बदलता रहता है। पार्क में वन्य पशु भी विचरण करते हैं। एक हिरन घूमते हुए हमने देखा। पार्क के एक ओर नदी बहती है, जिसके समुद्र-जैसे चौड़े पाट को तथा अन्य दृश्यों को देखने के लिए रुकने के स्थान बने हैं। एक स्थान पर सूचनाएं दी गई हैं कि वहां के पहाड़ों का आकार और वर्ण किस प्रकार बदलता रहा है।

पार्क किसी भी नगर के फेफड़े माने जाते हैं। इसी से नगरों में

पार्कों की व्यवस्था की जाती है। इतने विशाल पार्क को तो वहां का वरदान ही माना जाना चाहिए।

पार्क में गंदगी का कहीं नामोनिशान नहीं था। सड़कें भी सीमित थीं, बड़ी ही साफ़-सुथरी और व्यवस्थित। मौसम अनुकूल न होने के कारण दर्शनार्थियों की भीड़ उस दिन अधिक नहीं थी। विश्राम-स्थल पर चार-पांच मोटरें खड़ी थीं और आठ-दस यात्री इधर-उधर घूम रहे थे। नीचे जल-धारा के निकट जाने के लिए पक्की सीढ़ियां बनी हुई थीं।

औटवा में तीन नदियों का संगम है—औटवा, गैटिनो और रीडो। ये तीनों नदियां जहां मिलती हैं, वहां दर्शनार्थियों की भीड़ निरन्तर बनी रहती है। एक विशाल प्रपात भी वहां है। नीचे जल में बहुत-से सैलानी नावों में घूमते रहते हैं। सच यह है कि इस नगर में तीन नदियों का ही संगम नहीं है, राजनीति, संस्कृति और कला का भी अद्भुत संगम है।

औटवा का कृषि फार्म देखने योग्य है। पिछली बार हमें नवीन वे फार्म दिखाने ले गये थे। वह काम भी वहीं करते हैं। पशुओं पर किस प्रकार शोध होती है, यह हमने देखा था। एक स्थान पर दो महिलाएं चर्खे पर ठीक भारत की तरह ऊन कात रही थीं। हमने उन्हें बताया कि गांधीजी ने चर्खे पर बहुत बल दिया था और उसे सारे उद्योगों का मध्य-बिन्दु कहा था। हमने उन्हें यह भी बताया कि भारत में आजादी की लड़ाई के दिनों में गांधीजी ने कहा था, "घर-घर चर्खा चलाओ, मैं तुम्हें एक वर्ष में स्वराज्य दिलवा दूंगा।" चर्खे के पीछे उनका एक महान ध्येय था। उसके द्वारा वह शोषण-रहित समाज की स्थापना करना चाहते थे।

वे महिलाएं यह सब नहीं जानती थीं। मैंने जब उन्हें अपने खादी के कपड़े दिखाये तो वे रोमांचित हो उठीं। गांधी-विचार के प्रतीक के रूप में मैंने उन्हें खादी का एक रूमाल भेंट में दिया तो वे बहुत ही आनंदित हुईं।

दिल्ली की एक पत्रकार-लेखिका बहन पुरुषोत्तमा कपूर कई वर्ष से वहां रहती हैं। कुछ समय पूर्व जब वह दिल्ली आई थीं तो मुझसे मिली थीं और अपना पता तथा फ़ोन नम्बर दे गई थीं। हम लोग उनसे मिलने गये। बड़े प्रेम से मिलीं। जलपान कराया। वहां की स्थिति बताती रहीं। पत्रकारिता के अपने कटु अनुभव सुनाती रहीं। उन्होंने वहां कुछ पत्रों में योगदान दिया, किन्तु वह प्रयोग चला नहीं। अब वह मकानों के क्रय-विक्रय का काम करती हैं। उससे उनकी आजीविका चल जाती है, पर मन का समाधान नहीं होता। इन प्रेमल बहन के प्रति मेरे मन में गहरी आत्मीयता है। जब वह दिल्ली के दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' में काम करती थीं, उनसे सम्पर्क हुआ था, जो उनके विदेश चले जाने पर भी टूटा नहीं। वह जब-जब दिल्ली आती हैं, मुझसे अवश्य मिलती हैं। उन्हें दुःख था कि लेखन के क्षेत्र से उन्हें हटना पड़ा। मैंने उनसे आग्रह किया कि वह अपने अनुभव लिख डालें। वे अनुभव पाठकों के लिए काम के सिद्ध होंगे।

कैनेडा खुशहाल देश है। विभिन्न देशों के लोग वहां आये और बस गये। इस प्रकार वहां अनेक जातियों, धर्मों, विश्वासों, संस्कृतियों, आचार-विचारों का सुन्दर समन्वय है। भारतीय भी वहां बड़ी संख्या में हैं। उन्होंने अपने-अपने धर्म-स्थल बनाये हैं। हम लोग शहर से कुछ दूर पर बने एक हिन्दू मंदिर को देखने गये। वहां अनेक भारतीयों से भेंट हुई। मंदिर में पूजा-पाठ तो होता ही है, अन्य धार्मिक प्रवृत्तियां

भी चलती रहती हैं। मंदिर में राम, सीता, कृष्ण, राधा, गणेश, दुर्गा आदि की जयपुर में बनी सफ़ेद मूर्त्तियां हैं, कुछ दक्षिण में बनी काली मूर्त्तियां हैं। मुझे यह देखकर हर्ष हुआ कि अनेक बुद्धिजीवी भारतीय उस संस्थान से सम्पृक्त थे।

नवीन ने बताया कि वहां जैनों की संख्या भी काफ़ी है। उनके मंदिर हैं। कई जैन-पत्रिकाएं भी विभिन्न स्थानों से प्रकाशित होती हैं, जिनमें स्थानीय तथा भारत के लेखक-लेखिकाओं की रचनाएं निकलती रहती हैं। यह शुभ लक्षण है। भौतिकवादी सभ्यता से यद्यपि भारतीयों का जीवन वहां प्रभावित है और उनके रहन-सहन, भाषा आदि पर वह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, फिर भी अपने धर्म-संस्कृति की ज्योति को प्रज्चलित रखना निश्चय ही श्लाघनीय है।

अमरीका की भांति कैनेडा में भी हरियाली ख़ूब है। प्रत्येक भाग में मार्ग के दोनों ओर हरे-भरे ऊंचे-ऊंचे वृक्ष, पुष्पों से सुशोभित पेड़-पौधे और हरी-हरी घास, जलाशय, नदियां हज़ारों मील की यात्रा में भी उबाती और थकाती नहीं हैं। दो देशों की तुलना करना आसान नहीं है, फिर भी मैं कहूंगा कि अमरीका की जैसी समृद्धि कैनेडा में भले ही न हो, किन्तु वह अपेक्षाकृत अधिक शान्त और शालीन है। सफ़ाई भी मुझे वहां अमरीका से अधिक दिखाई दी। छोटे-बड़े अपराध यों कैनेडा में भी होते हैं, लेकिन मुझे बताया गया कि अमरीका जितने नहीं होते।

जहां तक पोशाक का संबंध है, दोनों ही देशों के लोग बड़े विचित्र कपड़े पहनते हैं। इंग्लैण्ड, चीन, जापान आदि देशों की अपनी पोशाकें हैं, लेकिन कैनेडा और अमरीका—दोनों उनसे भिन्न हैं। संभवतः स्त्री और पुरुष दोनों ही पोशाक का कोई बंधन स्वीकार नहीं करते। जो

जी में आया, पहन लिया। लगता है, नयापन उन्हें पसंद है। मौसम के हिसाब से उनकी पोशाक में परिवर्त्तन आता रहता है।

जीवन कैनेडा का भी मुक्त है। विवाह वहां धार्मिक अनुष्ठान नहीं है। जबतक निभा, निभाया। नहीं निभा तो तोड़ दिया। कुछ अपवादों को छोड़ कर तलाक यहां का आम रिवाज़ है। बड़ी उम्र में भी यहां ब्याह-शादी खूब होते रहते हैं। कोई गहरा आत्मीय भाव उसके पीछे नहीं है। मन की मौज है।

मर्यादाएं होते हुए भी इन देशों की कुछ अपनी विशेषताएं हैं। यहां कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं है। पुरुषार्थ यहां के जीवन का अनिवार्य अंग है। सारे काम अपने हाथ से करने होते हैं। यहां नौकर नहीं हैं। काम का बंटवारा नहीं है। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर घर की सफ़ाई से लेकर खाना-बनाने तक का सारा काम करते हैं। बच्चों का विकास भी स्वतंत्र रूप में होता है। बचपन से ही बच्चे अपना जीवन स्वयं जीने के आदी हो जाते हैं। वे अपने-अपने कमरों में उठते-बैठते, पढ़ते-लिखते, सोते-जागते हैं। नतीजा यह होता है कि एक उम्र पर वे अपने माता-पिता से अलग हो जाते हैं। बुढ़ापे में माता-पिता शरीर से लाचार हो जाने पर भी अकेले अपना जीवन व्यतीत करते हैं। मैंने कैनेडा और अमरीका, दोनों देशों में वृद्ध माता-पिता की आंखों में जो बेबसी देखी, वह भुलाये भूलती नहीं। पश्चिमी सभ्यता का यह रोग अब भारत में भी फैलता जा रहा है। संयुक्त परिवार की परिपाटी टूट जाने पर यही तो होता है। पर मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन के अंतिम क्षण तक यहां पुरुषार्थ करना आवश्यक होता है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए खेल-कूद, व्यायाम, योगासन

आदि का चलन ख़ूब है। दूरदर्शन पर योगासन के कार्यक्रम बराबर आते रहते हैं। खेल-कूदों में आजकल बेस-बॉल की प्रमुखता है। टौरेंटो में करोड़ों डालर ख़र्च करके एक स्टैडियम बनाया गया है, जिसकी अपनी विशेषता है। उसकी विशाल छत खुल जाती है और बंद हो जाती है। उसमें पचास हजार से अधिक दर्शकों के बैठने का स्थान है। बहुत-से खेल उसमें होते रहते हैं। हम लोग बेस-बॉल का मैच देखने एक संध्या को वहां गये थे। खेल रात को देर तक चलता है। प्रकाश की समुचित व्यवस्था होने के कारण खेल को जल्दी समाप्त करने की लाचारी नहीं होती।

पिछले पांच वर्ष में, हमारे विगत प्रवास के बाद, कैनेडा में काफ़ी परिवर्त्तन हुआ है। नई-नई बस्तियां बन गई हैं। टौरेंटो शहर का एक बाजार चीनियों ने अपने हाथ में ले लिया है। हम लोग उस बाजार से गुजरे तो हमने देखा कि उस बाज़ार के सारे नाम-पट्ट अंग्रेज़ी और चीनी भाषा में थे। वहां एक सड़क पर भारतीयों का भी बाजार था, लेकिन वहां एक भी नाम-पट्ट हिन्दी या और किसी भारतीय भाषा में नहीं था। जो काम भारतीय नहीं कर सके, उसे चीनियों ने कर दिखाया।

यहां समृद्धि इतनी है कि नौकर-पेशा तक अपनी मोटरें रखते हैं। प्राइमरी स्कूल का अध्यापक, डाकिया, सफाई करने वाला कर्मचारी आदि की अपनी-अपनी गाड़ियां हैं। फलतः सबेरे या शाम को चहल-कदमी करने वाले दो-चार लोगों को छोड़ कर सड़क की पटरियों पर पैदल चलने वाले व्यक्ति दिखाई नहीं देते। कमाई कम हो या ज्यादा, लोग सुविधापूर्वक रहते हैं, अच्छा खाते-पीते हैं और भविष्य की चिन्ता में अपने समय और शक्ति का अपव्यय नहीं करते।

कैनेडा से कई बड़े-बड़े समाचार-पत्र निकलते हैं। रोज़ाना ६४ या उतने पृष्ठ रहना तो सामान्य बात है, शनिवार को सौ-सवा सौ पृष्ठ रहते हैं। पूरे पत्र में कई खण्ड होते हैं, पर उनमें विज्ञापनों की भरमार रहती है। कुछ विज्ञापन तो बड़े मजेदार होते हैं। कोई-कोई संस्थान अपनी वस्तुओं के रियायती मूल्य में बिक्री की सूचना देते हैं। इसे 'सेल' कहा जाता है। इस विज्ञापन से वहां ख़रीददारों का तांता लग जाता है। बहुत-से मॉलों में प्रवेश-द्वार के निकट ही सूचियों का ढेर लगा रहता है, जिनमें रियायती मूल्य में बिकने वाली चीजों के पहले के और अब घटती के मूल्य अंकित रहते हैं। बिक्री का यह अपना ढंग है और इससे बेचने वाले तथा खरीदने वाले दोनों को लाभ होता है।

आज सारी दुनिया की अर्थ-व्यवस्था चरमरा रही है। कैनेडा भी इसका अपवाद नहीं है। नई बस्तियों में जहां ज़मीन के दाम बढ़े हैं, वहां पुरानी बस्तियों में मकानों के दाम घटे हैं। जगह-जगह पर मकानों पर 'बिक्री के लिए' अथवा 'किराये के लिए' की तख्तियां लगी हैं। नई मोटरों के दाम बढ़े हैं, पर पुरानी मोटरों की ख़रीद के दाम नीचे गिर गये हैं।

यहां के बाज़ार की एक विशेषता है। ग्राहकों की भीड़ बनाये रखने के लिए नई-नई चीज़ें बराबर आती रहती हैं। खाने-पीने की चीज़ों से लेकर पहनने के कपड़ों और रोज़मर्रा के काम में आने वाले फर्नीचर आदि में नई-नई चीज़ें निकलती रहती हैं। उससे बाज़ार की गति मंद नहीं पड़ती। उनके विज्ञापन भी बड़े दिलचस्प होते हैं। आज आप खाने की कोई चीज़ ख़रीद कर लाये हैं। अगले दिन अखबार में उसका विज्ञापन आता है। नीचे लिखा होता है—'बढ़िया'। उसीके

बराबर उसी ढंग की खाने की नई चीज़ का विज्ञापन होता है, जिसके नीचे लिखा होता है—'उससे भी बढ़िया', यानी कल जो खाद्य सामग्री लाये थे, उसे कूड़ेदान में डाल दो और नई चीज़ को ख़रीद लाओ। बिक्री के नये-नये तरीके अपनाना इन लोगों को ख़ूब आता है।

यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बाज़ार में सब चीज़ें शुद्ध मिलती हैं। मिलावट यहां दण्डनीय अपराध माना जाता है। हरी सब्जियां, फल आदि एक-से-एक बढ़कर, और सबके दाम निश्चित, सौदेबाज़ी की गुंजाइश नहीं। दूध, छाछ, रस ख़ालिस, उनकी प्रामाणिकता में संदेह की गुंजाइश नहीं। कपड़े में तनिक भी दोष हो तो वहां निशान लगा रहेगा और उसके मूल्य में कमी कर जायगी। यदि दोष का पता घर आकर लगे तो वापस कर आइये, या बदले में निर्दोष चीज़ ले आइये।

राजनीति के बारे में नागरिकों के बीच, काम के घंटों में, लम्बी-लम्बी बहसें नहीं चलतीं और न लोग व्यर्थ के तर्क-वितर्क में अपना समय खोते हैं। 'काम के समय बात नहीं—काम' यह सिद्धान्त उनके सामने रहता है। जिस चीज़ से उनका सरोकार नहीं, उसके पचड़े में वे नहीं पड़ते। अधिकतर लोग अपना काम ईमानदारी से करते हैं। राजनीति के मसले राजनीतिज्ञों पर छोड़कर नागरिक अपने दायित्व का निर्वाह करते हैं।

पुरुषार्थ और समृद्धि साथ-साथ चलते हैं। साधना से सिद्धि प्राप्त होती है। इस तथ्य को उन लोगों ने अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया है। काम में लिहाज़ नहीं, नौकरियों में मुलाहज़ा नहीं, अल्प-संख्यक और बहु-संख्यक का पचड़ा नहीं। नौकरियों में योग्यता की कसौटी अनिवार्य, यही है कैनेडा और अमरीका की खुशहाली का राज़।

हमें अब पुनः जर्मनटाउन (मेरीलैण्ड) लौटना था। औटवा के दिन नवीन, उनकी पत्नी ट्रिश तथा उनके बच्चों के साथ बड़े आनंद में बीते।

१७/विश्व का एक आश्चर्य

२७ मई को हम नवीन के साथ कार द्वारा वाशिंगटन के लिए रवाना हो गये। सारे रास्ते बादल छाये रहे। कहीं-कहीं वर्षा भी होती रही, पर कुल मिलाकर यात्रा बराबर चलती रही। बफ़ेलो पर हमने अमरीका में प्रवेश किया तो हमारे पासपोर्ट देखे गये। जाते समय सुधीर ने बताया था कि कैनेडा सरकार की वर्त्तमान आर्थिक नीति के कारण वहां चीज़ें महंगी हो गई हैं, अमरीका में अपेक्षाकृत सस्ती हैं। इसलिए शनिवार, रविवार या और किसी छुट्टी के दिन कैनेडा के लोग बफ़ेलो आ जाते हैं और सामान ख़रीद कर ले जाते हैं। पर हमें तो आते-जाते अधिक भीड़ मिली नहीं। शायद इसका कारण मौसम की ख़राबी रहा हो। बारह घंटे में हम जर्मनटाउन (मेरीलैण्ड) पहुंच गए। परिस्थितिवश फ्लोरिडा का कार्यक्रम कुछ समय के लिए और आगे बढ़ाना पड़ा।

इस बीच ३१ मई को मैं, नवीन और अन्नदा बॉल्टीमोर गये।

हमारे परिवार के एक भाई डॉक्टर मिश्रीलाल जैन अनेक वर्षों से वहां रहते हैं। उनकी शिक्षा दिल्ली के पूसा इंस्टीट्यूट में हुई थी। पढ़ाई पूरी करके वह अमरीका चले गये और मेरीलैण्ड की बॉल्टीमोर नगरी में बस गये। उनकी पत्नी कमल एम० बी० बी० एस० हैं। पहले अस्पताल में डाक्टर थीं, अब निजी प्रैक्टिस करती हैं। हम लोग जब-जब अमरीका आये थे, बॉल्टीमोर अवश्य गये थे और उन्हीं के साथ ठहरे थे। इस बार उन्होंने बॉल्टीमोर और वाशिंगटन के बीच पांच एकड़ भूमि में अपना विशाल दोमंज़िला भवन बनाया था। सारी आधुनिक सुविधाओं से उसे सज्जित किया था। घर की विशालता और भव्यता को देखकर बड़ा हर्ष हुआ। यदि व्यक्ति पुरुषार्थी और सूझबूझ का हो तो क्या से क्या कर डालता है, मिश्री और कमल इसकी जीती-जागती मिसाल हैं। मिश्री खाली हाथ यहां आये थे। जो कुछ अर्जित किया है, अपने पराक्रम से किया है। उनकी लड़की डॉक्टर है, लड़का वकील। उनके साथ भोजन किया। ख़ूब आनंद से बातें कीं। जो क्षण उनके साथ व्यतीत हुए, वे बड़े ही स्फूर्तिदायक थे।

अगले दिन नवीन औटवा लौट गये।

६ जून को पराग हमें एक ऐसा स्थान दिखाने ले गया, जिसे मैं विश्व का एक आश्चर्य मानता हूं। ये हैं लूरे की कन्दराएं। जर्मनटाउन से लगभग सवा सौ मील की दूरी पर, वर्जीनिया राज्य में, मैसेन्यूटन पर्वत-माला है। उसकी तलहटी में शोनेनडोह नामक नदी बहती है। इस नदी के दक्षिण में ये उपत्यकाएं अवस्थित हैं। वैसे तो वहां तक सारा मार्ग ही अत्यन्त मनोरम है, किन्तु ज्योंही पर्वत की चढ़ाई आरंभ होती है और टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर कार आगे बढ़ती है, चारों ओर की

दृश्यावली हिमालय की याद दिलाती है। सघन वन मन को मुग्ध कर देते हैं। बीच-बीच में छोटी-छोटी बस्तियां बिखरी दिखाई देती हैं। अचानक एक लम्बा-चौड़ा मैदान आता है, जिसमें कुछ मकान बने हुए दिखाई पड़ते हैं। एक मॉल, एक अजायबघर और एक रेस्तरां। इनके अतिरिक्त पर्यटकों की अनगिनत कारें। बाहर से देखने पर कोई स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता कि नीचे इतनी अनमोल सम्पदा छिपी हुई है।

कारों की पंक्ति में गाड़ी खड़ी करके हम लोग मैदान के उस भाग में गये, जहां पुरातन समय की मोटर गाड़ियों का प्रदर्शन होता है। उनसे पता चलता है कि आधुनिक मोटर-उद्योग किन-किन अवस्थाओं से गुज़रा है। उसके बाद पराग अंदर जाने के लिए टिकट ख़रीदकर ले आया। वह और शिल्पी कुछ ही दिन पहले उन गुफाओं को देख आये थे। अन्नदा और मैं पंक्ति में खड़े हुए। एक गाइड के पीछे-पीछे हम लोग कुछ सीढ़ियां उतरकर भीतर पहुंच गये। वहां जो देखा, अपनी आंखों पर विश्वास नहीं कर सके। सिवा उस रास्ते के, जो दर्शनार्थियों द्वारा गुफाओं के अवलोकनार्थ घूमने के लिए बनाया गया है, मानव-निर्मित कुछ भी नहीं है। सबकुछ प्रकृति ने अपनी छेनी से बनाया है। मनुष्य अपने को कितना ही बड़ा कलाकार क्यों न माने, प्रकृति की बराबरी वह कदापि नहीं कर सकता।

कन्दराएं तीस से लेकर एक सौ चालीस मीटर तक ऊंची हैं। कठोर पाषाणों को प्रकृति ने इस प्रकार तराशा है, जैसे वह मोम हो। कहीं-कहीं विशाल हॉल बनाकर उसे भांति-भांति की आकृतियों से सजाया है तो कहीं छोटे-बड़े कलापूर्ण स्तंभ बनाये हैं। कहीं-कहीं पहाड़ों को काटकर छत से पतली-पतली नुकीली, लम्बी-छोटी,

धारदार तलवारें जैसी पट्टियां लटकाई हैं तो कहीं-कहीं पर गहरी गुफाएं बना दी हैं, जिनमें नाना प्रकार की आकृतियां दिखाई देती हैं। कहीं-कहीं बेल-बूटेदार छतें हैं तो कहीं-कहीं पारदर्शी जलाशय। एक स्थान पर एक जलाशय के बारे में लोगों की मान्यता है कि उसमें सिक्का डालने पर व्यक्तियों की मनोकामना पूर्ण हो जाती है। गाइड ने बताया कि इससे साल में करोड़ों डालर की आमदनी हो जाती है।

सारी गुफाओं में बिजली की रोशनी की व्यवस्था है, जिससे पर्यटक प्रकृति की उस अद्‌भुत कारीगरी को अच्छी तरह देख सकें। कहीं-कहीं गाइड टार्च की रोशनी डालकर कुछ विशेष स्थलों की ओर संकेत करता था। कहीं-कहीं पर विशाल कन्दराओं को दिखाने के लिए फ्लड लाइट लगाई गई है।

एक स्थान पर एक भग्न गिरजा जैसा कमरा है, जिसमें वाद्य की सहायता से बहुत ही मधुर संगीत सुनाई देता है। कहीं-कहीं पर पत्थर इतने चिकने और चमकीले हैं कि उन पर पानी बहने का शक होता है और पर्यटक हाथ फिरा कर देखते हैं।

एक जगह पर सफ़ेद अंडे जैसे पत्थर थे। उनकी ओर संकेत करते हुए गाइड ने मुस्कराकर कहा, "इन्हें छूकर जाना बड़ा शुभ माना जाता है और मैं हमेशा इन्हें छूकर जाया करता हूं।" उसकी इस बात पर वह कंदरा पर्यटकों की हंसी से भर गई।

गुफाओं में कई रंग के पत्थर हैं : सफ़ेद, नारंगी, सलहटी आदि-आदि। विस्मय की बात है कि कहीं-कहीं पर एक ही गुफा में कई-कई रंग के पत्थर हैं।

मैंने गाइड से कई प्रश्न पूछे :

"क्या किसी भी गुफा में किसी भी रूप में आदमी का हाथ लगा है?"

"नहीं।"

"क्या किसी गुफा की आकृतियों में प्राचीन काल से अबतक कोई अंतर आया है?"

"नहीं।"

"क्या किसी गुफा का कोई अंश खंडित हुआ है?"

"हां, एक गुफा का एक छोटा-सा भाग टूट गया था।"

"कहीं-कहीं पर पानी आता दिखाई देता है। क्या उसका असर पत्थर पर नहीं होता?"

"अबतक वैसा असर दिखाई नहीं दिया।"

गुफाओं को बड़ी जल्दी-जल्दी में देखा, फिर भी एक घंटा बीस मिनट लग गये।

लूरे की बस्ती को कुछ जर्मन और स्विस लोगों ने सन् १८१२ में बसाया था। वर्जीनिया के बीहड़ वनों के निकट होने के कारण 'अमर इंडियनों' के आक्रमण का निरन्तर ख़तरा बना रहता था। इसलिए प्राचीन काल में लोग अपने घरों में मोटे पत्थरों की दीवारों के भीतर मज़बूत किले बनाते थे और इस प्रकार अपनी सुरक्षा करते थे। ये किले आमतौर पर तलघर में बनाये जाते थे और उनमें भोजन तथा ईंधन की व्यवस्था रहती थी। बहुत-से पुराने घर और गिरजे आज भी विशेष अवसरों पर देखे जा सकते हैं।

कन्दरा के प्रवेश-द्वार से पश्चिम में कुछ दूरी पर एक एक सौ सत्तरह फुट ऊंची मीनार है। उसका निचला भाग पच्चीस वर्ग फुट का है। उसमें सैंतालीस घंटे-घंटियां लगे हैं। भारी-से-भारी घंटा सात

हजार छः सौ चालीस पौण्ड का है और हल्का साढ़े बारह पौण्ड का। इन घंटों की ध्वनि दो सौ से तीन सौ गज की दूरी से सुनी जा सकती है।

लूरे का महत्व उसकी कन्दराओं के कारण तो है ही, उसकी नैसर्गिक सुषमा भी अद्वितीय है।

१८/द्यूतनगरी अटलांटिक सिटी

पिछली बार जब हम अमरीका आये थे, घूमते-घामते अटलांटिक सिटी गये थे, जिसे 'द्यूतनगरी' कहा जा सकता है। उस नगरी में जगह-जगह पर जुआघर बने हैं। इन छोटे-बड़े जुआघरों में विभिन्न प्रकार से जुआ खेला जाता है। हम लोग बचपन में दिवाली के दिन घर के लोग मिलकर कुछ पैसों से जुआ खेला करते थे। कहा जाता था, लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए जुआ खेलना आवश्यक होता है। घर-घर जुआ होता था। पर मैंने अपने जीवन में कभी कोई जुआघर नहीं देखा था। उपन्यासों में जुआघर की बात ज़रूर पढ़ी थी। इसलिए जुआघर देखने की जिज्ञासा थी। रात के समय सारी नगरी विद्युत प्रकाश में जगमगा रही थी। हम लोग 'शो बोट' नामक जुआघर में गये। वहां एक बहुत बड़े हॉल में जगह-जगह जुए के थड़े थे। एक ओर को मशीनें लगी थीं। उनके खांचे में पच्चीस या पचास सेंट का या एक डालर का सिक्का डाला जाता था। उसके

डालते ही पहिया घूमता था। उसके रुकने पर यदि एक पंक्ति में एक अक्षर या एक फूल समानान्तर तीन बार आ जाता था तो जीत हो जाती थी और खन-खन करते सिक्के निकल पड़ते थे। अगर समान अक्षर या फूल नहीं आते थे तो अपना डाला हुआ सिक्का चला जाता था। दूसरी ओर ताश के पत्तों का जुआ था, जिसमें दांव एक डालर से कम नहीं लगाया जाता था। और भी कई तरह के जुए थे। हार-जीत का वह खेल बहुत बड़े पैमाने पर चल रहा था।

हम लोग भी उनमें शामिल हो गये। हमारी टोली में से किसी ने पच्चीस सेंट का एक सिक्का मेरे हाथ में दे दिया और किसी भी मशीन के खांचे में डालने को कहा। मैंने झिझकते हुए डाला। संयोग से तीन फूल एक-से आ गये। फिर क्या था, खनाखन सिक्के निकल पड़े। उन्हें एक डिब्बे में डालकर मैंने अपनी टोली के सदस्यों को दे दिया। हार-जीत की आंख-मिचौनी चलती रही। अंत में हमने पाया कि सारे सदस्य कुल मिलाकर लगभग डेढ़ सौ डालर हार गये। जुए की हार और जीत, दोनों ही आकर्षक होती हैं। उस आकर्षण में कितना अनर्थ छिपा रहता है, यह हम महाभारत में अच्छी तरह देख चुके हैं।

उस जुआघर में भारतीय काफ़ी बड़ी संख्या में थे। जिन-जिन से बात हुई, उनमें से अधिकांश हारे हुए थे। जुए में जीतते तो बिरले हैं। उससे लालच को बढ़ावा मिलता है। उस लालच में आदमी बर्बाद हो जाता है। इसी से द्यूत को मद्य के समान एक पातक माना है।

हम लोगों ने खोये पैसों को वसूलने की लालच को जीता और जुआघर से बाहर निकल आये!

इस बार पराग ने पेनसिलवानिया जाने का कार्यक्रम बनाया।

वहां के मॉलों में फैक्टरियों से सीधा माल आता है, जो अच्छा और सस्ता होता है। वहां से कमीज़ें, जूते आदि ख़रीदने थे। हमलोग १३ जून को दोपहर ग्यारह बजे घर से निकले। लगभग दो बजे डेलवेयर के निकट एक मॉल में गये। वहां कपड़े और जूते अच्छे मिले। पर पराग को लगा कि पेनसिलवानिया-स्थित रेडिंग नगर के मॉलों में सामान और अच्छा तथा सस्ता मिल जायगा। वहां पहुंचे। फैक्टरी से सीधे आने वाले सामान का वह बहुत बड़ा बाज़ार था। हमने उस बाज़ार का चक्कर लगाया, कई मॉलों में गये, लेकिन पीछे जो मॉल छोड़ आये थे, उससे अच्छा या सस्ता तो दूर, उसके मुक़ाबले का भी माल नहीं मिला।

घूमते-घूमते शाम हो गई। लौटते वक़्त दूसरे रास्ते से द्यूतनगरी अटलांटिक सिटी रास्ते में पड़ती थी। उस रास्ते से आने का निश्चय इसलिए किया कि थोड़ी देर रुककर वहां का तमाशा भी देखते चलें। बहुत दूर का रास्ता नहीं था। क़रीब नौ-साढ़े नौ बजे वहां पहुंच गये। गाड़ी को खड़ा करके सीधे 'ताजमहल' नामक जुआघर में गये, जो बड़ा ही शानदार था। उसके सामने फव्वारे चल रहे थे, जो बिजली के जगमगाते प्रकाश में बड़े सुहावने लग रहे थे। विदेशी और भारतीय, दोनों का वहां जमघट था। खेल ज़ोरों से चल रहा था। हम लोगों ने भी दांव लगाये। खांचे में पचास सेंट के सिक्के डाले, फिर ताश के जुए में शरीक़ हुए। शुरू में पराग चालीस डालर जीता, किन्तु बाद में जीते हुए डालर तो गये ही, अपने साथ एक सौ बीस डालर और ले गये। पराग ने हार की सीमा बांध ली थी। उतना हार जाने पर उसने हाथ खींच लिया।

पता चला कि जिस व्यक्ति ने यह शानदार जुआघर बनाया है,

उसने उसके निर्माण और सजावट में इतना पैसा लगा दिया है और अब उसका ख़र्च इतना है कि उसका दिवाला निकल गया है। उसने बैंक से कर्ज़ लिया है, फिर भी पूरा नहीं पड़ रहा है। उसे अपना एक दूसरा जुआघर बंद कर देना पड़ा है। अच्छे दिनों की आशा संजोये हुए वह इस सफ़ेद हाथी का पोषण कर रहा है, पर कौन कह सकता है कि ऐसे विनाशकारी काम में भाग्य उसका साथ देगा ?

१६/जगत-प्रसिद्ध फ़्लोरिडा

इस बार का हमारा प्रवास इतना लम्बा कुछ इसलिए भी हुआ कि नवीन और पराग हमें फ़्लोरिडा ले जाने पर तुले हुए थे। नवीन का साथ छूट गया, किन्तु परिस्थिति अनुकूल होते ही हम १६ जून को प्रातः साढ़े छः बजे जर्मनटाउन से कार द्वारा रवाना हो गये। टोली में हम चार जने थे—अन्नदा, पराग, शिल्पी और मैं। जर्मनटाउन से ऑरलैण्डो, जहां हमें ठहरना था, साढ़े नौ सौ मील था। सत्तर-पचहत्तर मील घंटे के हिसाब से चलने पर चौदह-पंद्रह घंटे में वहां पहुंच जाने की बात थी। नवीन का आग्रह था कि हम बीच में सवाना नामक स्थान पर रात को ठहर जायं और अगले दिन मज़े-मज़े में दोपहर तक ऑरलैण्डो पहुंच जायं, पर उसकी ज़रूरत नहीं पड़ी। गाड़ी चलाने के लिए हमारे पास दो व्यक्ति थे पराग और उसकी पत्नी शिल्पी।

दोनों ने उस लम्बे सफ़र को आराम से तय किया और रास्ते के मनोरम दृश्यों को देखते हुए रात को सवा नौ बजे अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच गये।

ऑरलैण्डो फ़्लोरिडा का प्रसिद्ध स्थान है। वहां के 'ब्ल्यू ट्री रिज़ॉर्ट' में ठहरने की निःशुल्क व्यवस्था सुधीर ने कर दी थी। जिस समय हम लोग कैलाबोगी में ठहरे थे, तभी से सुधीर ने आर० सी० आई० से सम्पर्क करके उसकी भूमिका तैयार कर दी थी। आर० सी० आई० के वहां कई निवास-स्थान थे। ऑरलैण्डो का चुनाव इसलिए किया कि देखने योग्य स्थल सब उसके आसपास थे। हम लोगों के ठहरने की व्यवस्था समुद्र के किनारे के किसी स्थान में भी हो सकती थी, पर तब हमें प्रतिदिन दर्शनीय स्थान देखने के लिए कार द्वारा पचहत्तर-अस्सी मील की यात्रा करनी पड़ती। सिवा 'कैनेडी स्पेस सेंटर' के, जो ऑरलैण्डो से कोई सैंतालीस मील दूर था, शेष सब स्थान पांच-दस मील के घेरे में थे।

ब्ल्यू ट्री रिजॉर्ट पहुंचते ही हमने उसके कार्यालय से सम्पर्क किया तो उन्होंने ८१३ नम्बर का फ्लैट हमें दे दिया। उसमें एक बड़ा ड्राइंग रूम, दो कमरे, दो बाथरूम थे, बिजली-पानी की सुविधा थी, रसोई के सारे बर्त्तन थे, कपड़े धोने की मशीन थी। निहायत साफ़-सुथरा और कलापूर्ण स्थान था।

सबेरे उठकर पराग और मैं कार्यालय गये और वहां के कर्मचारियों की मदद से घूमने का कार्यक्रम निश्चित किया। हमारे पास छः दिन थे, शुक्रवार, २६ ज़ून को, हमें सबेरे ही वहां से रवाना हो जाना था। देखने को बहुत था। उसमें से चुनाव किया और उसे छः दिनों में बांटा। पहले दिन 'सी वर्ल्ड' अर्थात् 'सागर की दुनिया'

देखने का निश्चय किया।

रात भर वर्षा हुई थी। सबेरे भी थोड़ा-थोड़ा पानी पड़ रहा था। सोचा, दोपहर तक शायद मौसम साफ़ हो जाय, वैसे भी दिनभर हमें घूमना था, इसलिए खा-पीकर निकलने का तय किया। बारह बजे निबटे तबतक सचमुच पानी थम गया था। पांच मिनट में हम लोग 'सी वर्ल्ड' के प्रवेश द्वार पर पहुंच गये। टिकट सबेरे ही कार्यालय से ले चुके थे। सीधे अंदर चले गये। बड़ी भीड़ थी। दुनिया के कोने-कोने से लोग वहां आये हुए थे।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, वहां पानी के जीव-जन्तुओं का प्रदर्शन किया गया है। मूल भावना यह है कि लोग उन जीव-जंतुओं को देखें और उनके साथ आत्मीयता का नाता जोड़ें। अधिकांशतः वहां नाना प्रकार की मछलियों, डाल्फिनों, पानी के किनारे रहने वाली पैंग्विनों आदि को दिखाया गया था। इनमें से बहुतों को हमलोग विभिन्न स्थानों पर पहले देख चुके थे, पर वहां की विशेषता उनके प्रदर्शन के ढंग में थी। विशाल क्षेत्र में उन्होंने पृथक-पृथक प्रदर्शन की व्यवस्था की थी। शीशों के भीतर लम्बे-चौड़े जलाशयों में तरह-तरह की मछलियां स्वच्छंद रूप में दौड़ती दीख पड़ती थीं। उनके घरों को देखकर दर्शक चकित रह जाते थे। इतने कलापूर्ण घर कि कोई कुशल शिल्पी भी क्या बना सकेगा ! उनके बीच आनंद से मछलियां अठखेलियां करती हैं। शार्क की भयंकरता के क़िस्से हम पुस्तकों में पढ़ते हैं और कभी-कभी फिल्मों में देखते हैं कि वे किस प्रकार जहाज़ों को भी उलट देती हैं। हम उनके बीच घूम रहे थे। हमारे ज्ञान-वर्द्धन के लिए यह भी बताया गया था कि मछलियों में कौन-कौन सी मछलियां निरीह होती हैं, कौन विषैली और भयंकर।

शार्क मछली का नाम आते ही प्रायः मन में भय उत्पन्न होता है, किन्तु जब हम उनके बीच घूमते हैं तो उनके प्रति वितृष्णा नहीं, प्रेम पैदा होता है। साथ ही उनके पारस्परिक प्रेम और संघर्ष को देखकर एक सुखद अनुभूति होती है।

डाल्फिनों के करतब तो अद्भुत थे। डीलडौल में वे भयावनी लगती हैं, पर जब हम उन्हें जलाशय में इंसान के इशारे पर नाना प्रकार की क्रीड़ाएं करते देखते हैं तो हमारे भीतर सराहना का एक अनोखा भाव उपजता है। वे आदमी को अपनी पीठ पर पानी में घुमाती हैं, उसके इशारे पर उलटी-सीधी होती हैं, आदमी को पानी से कई फुट ऊंचा उठा लेती हैं और स्वयं भी अपने भारी-भरकम शरीर को लेकर उछल-कूद करती हैं। मज़ा आता है उन्हें देखने में। वहां तो दिखाया नहीं, लेकिन पहले किसी अन्य स्थान पर हमने देखा था कि वे पानी में गेंद खेलती हैं और किनारे पर खड़े आदमी के हाथ की रिंग में से उछल कर निकल जाती हैं।

'शैमू' नामक शार्क के क्रिया-कलाप तो निराले थे। नाना प्रकार के अपने करतबों से उस अकेली ने लगभग एक घंटे तक दर्शकों का मनोरंजन किया।

पेंग्विनों का साम्राज्य बहुत ही मोहक था। पानी के सहारे वे धरती पर ऐसे बैठी थीं, मानो किसी की प्रतीक्षा कर रही हों, अथवा कहीं जाने को सजधज कर तैयार हों। श्वेत और श्याम वर्ण का उनका शरीर मौन होकर भी मुखर था।

एक विशेष प्रकार की मछली देखी, जिसके शरीर में हड्डी नहीं थी। पतंग-जैसी काया को फड़फड़ाती पानी में इधर-उधर चक्कर लगाती थीं। उनकी खाल इतनी चिकनी थी कि उन्हें पकड़ कर हाथ

में लेना असंभव था।

'सी वर्ल्ड' का क्षेत्र इतना बड़ा था कि घूमते-घूमते हम लोग थक गये। उधर मौसम साफ़ हो गया और गर्मी ने हमें बेहाल कर दिया। फिर अधिकांश प्रदर्शनों का समय बंधा था, जिसके लिए बहुत देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी और कतार में लगना पड़ता था। फिर भी हम लोग घूमते रहे, घूमते रहे। सीमित समय में जितना देख सकते थे, देखा। पर कार्यक्रमों से अधिक संतोष वहां की साज-सज्जा, स्वच्छता, अनुशासन तथा व्यवस्था को देखकर हुआ। भवन, जलाशय, वृक्ष—सब कलापूर्ण थे। पर्यटकों के विश्राम के लिए जगह-जगह पर कुर्सियां पड़ी थीं, खाने-पीने के लिए रेस्तरां खुले थे और शर्बत, रस आदि के लिए छोटे-छोटे स्टॉल थे।

प्रदर्शन रात को काफ़ी देर तक चलते रहते हैं। लेकिन अंतिम कार्यक्रम हमने साढ़े नौ बजे आतिशबाज़ी का देखा। उसमें उन्होंने कुछ चीज़ें लेज़र से दिखाई थीं, पर अधिकांशतः भारत की तरह अनार, सुर्रियां इत्यादि थे।

अगले दिन, यानी २१ जून को 'कैनेडी स्पेस सेंटर' जाने का कार्यक्रम बनाया। जैसा हम पहले बता चुके हैं, यह स्थान ऑरलैण्डो से सैंतालीस मील दूर था। उसके साथ ही कैनेवरल एयर फोर्स स्टेशन भी था। ये केन्द्र एक लाख चालीस हज़ार एकड़ भूमि में अवस्थित हैं। इन्हें देखने की हमारी बड़ी इच्छा थी, क्योंकि यही वे केन्द्र हैं, जहां से अंतरिक्ष में प्रथम बार यात्रा की गई थी और बाद में वहीं से छोड़े 'अपोलो' में दो यात्री चन्द्रमा पर उतरे थे। अंतरिक्ष में जो भी प्रयोग होते हैं, सब वहीं से होते हैं। बहुत-से प्रयोग हम दूरदर्शन पर देख चुके थे, पर उनके वास्तविक स्थान को देखना कुछ और

ही अर्थ रखता था।

रास्ते का कुछ हिस्सा बड़ा सुन्दर है। हरियाली तो सारे रास्ते में है, लेकिन कुछ दूर तक रास्ते के दोनों ओर सागर है।

हमें पता था कि 'कैनेडी स्पेस सेंटर' का विस्तार बहुत है, अतः वहां पहुंचते ही हमने बस के टिकट ले लिये। बस छूटने में जो समय था, उसका उपयोग वहां की चीज़ें देखने में किया। जिन शटल आदि को हमने फिल्म में देखा था, उनके नमूने (मॉडल) वहां थे। उनका आकार-प्रकार और वज़न विस्मयकारी था। किस प्रकार इतने जटिल और भारी-भारी यंत्र तैयार किये गये होंगे, उसकी कल्पना करके रोमांच होता था। स्पेस शटल का मॉडल हमने अंदर जाकर देखा। उसके सामने तीन राकेट देखे।

बस में गाइड था, जो सारी जानकारी देता जाता था। उसने बताया कि उस भाग के दोनों ओर कोकोनट (ताड़) तथा पाइन (चीड़) के पौधे लगाये गये हैं। आगे चलकर यह मार्ग और भी सुन्दर बन जायगा। चलते-चलते उसने ताड़ के बड़े पेड़ों पर ईगिल (उलकाव) के घोंसले भी दिखाये। बस एक भवन के सामने रुकी। उतरकर हम अंदर गये। वहां उन्होंने एक फिल्म दिखाई, जिसमें बताया गया था कि किस प्रकार अंतरिक्ष यात्रियों की गाड़ी चन्द्रमा पर उतरी थी, किस प्रकार उनके दो अंतरिक्ष—यात्री नील ओ० आर्मस्ट्रांग और एडविन ई० एल्ड्रिन—उसमें से उतरे। यह सब मैं पहले भारत में देख चुका था, फिर भी एक बार पुनः देखकर अच्छा लगा।

और भी कई स्थान देखे, जिनका अंतरिक्ष में छोड़े जाने वाले यंत्रों के निर्माण और परीक्षण से संबंध था। प्रक्षेपास्त्र छोड़े जाने वाले स्थान का भी गाइड ने संकेत किया, लेकिन वहां तक जाने पर प्रतिबंध

था। दूर से ही उसने बता दिया। उसने एक ट्रांसपोर्टर भी दिखाया जिस पर रखकर वज़नी लांचर आदि एक जगह से दूसरी जगह ले जाये जाते हैं।

भावी योजनाओं के लिए भी जो तैयारियां हो रही हैं, और जो यंत्र तैयार किये जा रहे हैं, वे भी दिखाये। सेंटर के कर्मचारियों के आवास भी बताये। एकाध स्थानों को छोड़कर गाइड चलती गाड़ी से ही सारी जानकारी देता रहा, कहीं रुका नहीं। प्रक्षेपास्त्र के स्थान का दूर से ही इशारा करते हुए उसने एक मॉडल दिखाया और वहां गाड़ी को रोक कर सावधानी से उस मॉडल को देखने को कहा।

घंटे डेढ़ घंटे में चक्कर लगाकर जहां से गये थे, वहां आ गये। वहां पर एक भवन में कुछ अंतरिक्ष यात्रा की वस्तुएं रखी थीं, उन्हें देखते रहे। चित्रों पर भी निगाह डाली।

सच यह है कि हम जितनी आशा लेकर गये थे, वह पूरी नहीं हुई। सिवा कुछ मॉडलों और कुछ अंतरिक्ष यात्राओं से जुड़ी चीज़ों को देखने के विशेष कोई बात पल्ले नहीं पड़ी। जितने अपोलो अंतरिक्ष में गये थे, उनके विशिष्ट चिन्ह भी एक जगह देखने को मिले।

बादल घिरे थे। बस से जब हम उतरे तो वर्षा आरंभ हो गई। खूब पानी पड़ा। उसके रुकने पर हम लोग अपने निवास-स्थान पर लौट आये। ऐसा लगा कि जितना दिखाना चाहिए था, उतना दिखाया नहीं।

अगले दिन साढ़े बारह बजे 'एपकोट सेंटर' देखने गये। इस सेंटर को देखकर बड़ा आनंद आया। हमारे रिज़ॉर्ट के पास ही था वह। उसके बाहरी रूप, हरियाली, जलाशय आदि बड़े ही भव्य थे। अपार

भीड़ थी। एक-से-एक बढ़िया चीज़ें थीं । 'दुनिया की हलचलें' (दी वर्ल्ड ऑफ़ मोशन), अंतरिक्ष (होराइज़न), जीवन के आश्चर्य (वंडर्स ऑफ़ लाइफ), ऊर्जा का लोक (यूनीवर्स ऑफ़ एनर्जी), कल्पना-शक्ति में प्रवास (जर्नी इन्टू इमेजीनेशन), सजीव सागर (द लिविंग सीज़), स्पेसशिप अर्थ, बैक स्टेज मैजिक, एनर्जी एक्सचेंज, फ्यूचर कम्यूनिकेशन, एपकोट आउटरीच, बॉडी वार्स आदि मंडप देखे। वहां देखने को इतना था कि एक दिन में सब देख लेना असंभव था। विज्ञान और तकनीक की सहायता से इंसान ने क्या से क्या कर डाला है और भविष्य में दुनिया कहां पहुंचेगी, यह आभास वहां होता है। एक मण्डप में गाड़ी में दुनिया और अंतरिक्ष की जो सैर की, वह हमेशा याद रहेगी। बड़ी तेज रफ़्तार से गाड़ी कभी निचाई पर जाती थी, कभी ऊंचाई पर। उस गाड़ी में बैठने से पहले सूचना दे दी गई थी कि दिल के मरीज या कमजोर लोग उसमें न बैठें, पर हम चारों व्यक्ति उसमें बैठे और खूब मनोरंजन हुआ। वैसे उससे भी अधिक ख़तरनाक और रोमांचकारी उतार-चढ़ाव की गाड़ियों में हम कैनेडा के 'वंडर लैण्ड' में बैठ चुके थे। गाड़ी पूरी रफ़्तार से कई फुट ऊपर चढ़ती थी और फिर उसी रफ़्तार से कई फुट नीचे उतरती थी, फिर चढ़ती थी, फिर उतरती थी, पहाड़ों की अंधेरी गुफाओं में टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर दौड़ती थी। लगता था, अब कहीं किसी मोड़ पर टकराई, अब टकराई, पर टकराती नहीं। यह सैर हम कैनेडा में कर चुके थे, पर दोनों में अंतर था। यहां जो दिखाया गया था, उसके पीछे मनोरंजन के साथ-साथ विज्ञान और तकनीक की प्रगति का परिचय कराना था, जबकि कैनेडा के 'वंडर लैण्ड' में केवल मनोरंजन करना था। व्यक्ति की कल्पना-शक्ति से कितने आश्चर्यजनक आविष्कार हुए

हैं और हो रहे हैं, यह यहां के विभिन्न मंडपों में देखा जा सकता था।

कई देशों के भवन थे, जिनमें से हमने चीन और मैक्सिको के मंडप देखे। मैक्सिको के मंडप में नाव में भी बैठे।

हम लोग लगभग नौ घंटे घूमे, फिर भी जी भरा नहीं। मन करता था कि वहां जितना जो कुछ है, सब देख लें, किन्तु मण्डपों के अंदर जाने के लिए लम्बी कतारें बहुत-सा समय ले लेती थीं।

अगले दिन हमें डिजनी एम० जी० एम० स्टूडियो देखना था। उसकी जगह हमने 'यूनीवर्सल स्टूडियो' देखने का निश्चय किया। खा-पीकर बारह बजे निकले। स्थान पास में ही था। उसके विभिन्न मण्डपों में यह दिखाया जाता है कि यूनीवर्सल की फिल्में किस प्रकार बनाई जाती हैं। कई मण्डपों में हम गये। 'बैक टू दी फ्यूचर' तथा कांगफ्रंटेशन में तेरह हज़ार पौण्ड के वज़न और पैंतीस फुट ऊंचाई का किंग कांग किस प्रकार मार्ग में आता है, उसे देखकर बड़ा मनोरंजन हुआ। ई० टी० द्वारा सितारों की दुनिया में चक्कर लगाया। एल्फ्रेड हिचकॉक द्वारा निर्मित की जाने वाली फिल्मों की कला देखी। 'मर्डर शी रोट' फिल्म के निर्माण की विधि भी देखने में आई। किन्तु सबसे अधिक आनंद आया 'एनीमल एक्टर स्टेज' को देखकर। उसमें दिखाया गया था कि बिल्ली, कुत्ता, घोड़ा, तोता, बनमानुस आदि फिल्मों में किस प्रकार अपनी भूमिका अदा करते हैं। एक बिल्ली गुफा में से निकलकर आती है और घूमती हुई, पहाड़ के ऊपर टंगी टोकरी में जाकर बैठ जाती है और फिर रस्सी खींच कर उस शो का उद्घाटन करती है। एक तोता उड़कर आता है और खेल दिखाने वाली लड़की की बांह पर बैठ जाता है। फिर लड़की के आदेश पर,

दर्शकों के बीच हाथ में एक डालर का नोट लिये खड़े आदमी के हाथ से नोट ले आता है, बाद में लड़की के कहने पर लौटा आता है। एक बनमानुस आदमी की भांति व्यवहार करता है। लड़की उसके चांटा मारती है तो वह भी उसके चांटा मारता है। इस प्रदर्शन को देखकर हम सबको विशेष आनंद आया।

विभिन्न मंडपों को देखकर पता लगता है कि फिल्में किस प्रकार तैयार होती हैं, उन पर कितना ख़र्च किया जाता है, कितना ख़तरा उठाना पड़ता है, कितनी कल्पना-शक्ति की आवश्यकता होती है और नाना प्रकार के दृश्य किस प्रकार तैयार किये जाते हैं। इन सबकी कल्पना फिल्में देखकर नहीं होती। यहां स्टूडियो में उनकी तैयारी देखकर पता चलता है। कई सवारियों में बैठे, घूमता थियेटर देखा। इस केन्द्र की सजावट बड़ी सुन्दर थी।

रात को मौसम की भविष्यवाणी थी कि अगले दिन बड़े ज़ोर की वर्षा होगी। सबेरे जब हम उठे तो बादल घिरे हुए थे। रात को पानी भी पड़ा था। दोपहर तक हम कहीं नहीं गये, पर पानी नहीं पड़ा तो बाज़ार का चक्कर लगाया। कुछ सामान खरीदा। अन्नदा और मैंने टी० वी० पर एक फिल्म देखी, जिसमें एक हवाई जहाज़ के अपहरण की बड़ी रोमांचकारी घटना दिखाई गई थी। अंत में अपहरणकर्त्ता पकड़े जाते हैं। उन्हें बांध दिया जाता है। यात्रियों में एक पुलिस का आदमी है, एक वकील है। सब बहुत उत्तेजित होते हैं और अपहरणकर्त्ताओं से बदला लेने पर उतारू हो जाते हैं। तब विमान-चालक आकर कहता है कि आप सबकी जान मेरे हाथ में है। अब आगे कानून अपना काम करेगा, हमें कानून अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए।

अगले दिन के लिए फिर वर्षा की भविष्यवाणी हुई, अब प्रतीक्षा करने के लिए हमारे पास समय नहीं था। हमें २६ जून को सबेरे ही रवाना हो जाना था और आज २५ तारीख़ थी। अभी मैजिक किंगडम देखना शेष था।

खा-पीकर ग्यारह बजे घर से निकल पड़े। आसमान में बादल छाये थे, पर कोई चारा नहीं था। जो चीज़ें देखने का शुरू में निश्चय किया था, उनमें से बस एक चीज़ बची थी। उसे हर हालत में देखना ही था। पर वर्षा नहीं हुई और हम मज़े में घूम-फिर सके।

'मैजिक किंगडम' में बच्चों की और कार्टून फिल्मों की तैयारी दिखाई जाती है। सबसे पहले हम 'बिग थंडर माउण्टेन रेल रोड' की गाड़ी में बैठे। पर उससे पहले मोनोरेल में घूमे। यह रेल पटरियों पर नहीं चलती, मैग्नेट से चलती है। मैं इसकी सवारी कैनेडा और जापान में कर चुका था। उसका अपना आनंद था। 'रेल रोड' गाड़ी ने भी हमारा बहुत ही मनोरंजन किया। अनंतर 'मैड टी पार्टी', 'ट्वेन्टी थाउज़ेण्ड लीग्स अंडर दी सी', 'स्नो व्हाइट एडवेंचर', 'बैडवे पीपॅल मूवर' और 'स्पेस माउण्टेन' के मण्डप देखे। और भी मण्डप देखने की इच्छा थी। दो मण्डप और देखे। एक था 'मि० टोड्स वाइल्ड राइड' और 'मिकीज़ परेड'। लम्बी-लम्बी कतारें देखकर आगे हिम्मत नहीं हुई।

मिकी-माउस, प्लूटो, गूफ़ी और डोनाल्ड डक के विशाल पुतलों की बड़ी आकर्षक परेड हुई। ये पात्र ऐसे हैं, जिन्हें बच्चों की तथा कार्टून फिल्मों के माध्यम से बालक भली प्रकार जानते हैं। परेड को बच्चों और बड़ों ने बड़ी दिलचस्पी के साथ देखा। मुखौटे लगाये गाजे-बाजे के साथ और भी पात्र परेड में शामिल थे।

फ़्लोरिडा आज विश्व-विख्यात है, परन्तु आरंभ में उसे सबसे अधिक ख्याति उस समय प्राप्त हुई, जब वॉल्ट डिज़्नी नामक व्यक्ति ने यहां अपने लोक की रचना की। 'मैजिक किंगडम' को देखकर वैसे अच्छा लगा, लेकिन विशेष आनंद नहीं आया, क्योंकि उसके अधिकांश कार्यक्रम बच्चों के मनोरंजन को ध्यान में रखकर तैयार किये गये थे।

जोर की वर्षा हो रही थी। छातों का सहारा लेकर हम मोनोरेल के स्टेशन पर आये और वहां से उस अड्डे पर आ पहुंचे, जहां हमारी गाड़ी खड़ी हुई थी।

निश्चय किया था कि पानी थम जाने पर हम इस केन्द्र का एक बार फिर चक्कर लगा लेंगे और रात को दस बजे होने वाले शो को देखेंगे, लेकिन इन्द्र देवता का प्रकोप जारी रहा और हम लोग खा-पीकर सो गये। फ़्लोरिडा के प्रवास का यह अंतिम दिन था।

हम यहां १८ जून को आये थे और २६ को सवेरे पौने दस बजे रवाना हो गये। आकाश मेघाच्छन्न था, पर हम रुक नहीं सकते थे। हमें अपने आवास को दस बजे तक खाली कर देना था। रिजॉर्ट के कार्यालय में सामान रखकर हम कुछ समय और ठहर सकते थे, किन्तु उसकी आवश्यकता नहीं थी। जितना देखने योग्य था, देख चुके थे।

लौटते में उत्तर-दक्षिण कैरोलाइना में जब हमने प्रवेश किया तो बादल एक साथ फट पड़े। इतने ज़ोर का पानी पड़ा कि दो हाथ आगे की गाड़ी भी नहीं दीख पड़ती थी। पर पराग रुका नहीं, चलता ही रहा।

रास्ते में रिचमण्ड हिल गैस स्टेशन पर हम खाने के लिए रुके। वहां हाजी अमीन नामक एक भाई का आरामगृह था। अमीन ने बड़े

तपाक से हिन्दुस्तानी में हमारा स्वागत किया। उसके रेस्तरां में हमने अपने भोजन का पिटारा खोला, खाना खाया और रवाना हो गये। वर्षा का प्रकोप उसके बाद हुआ। रात को दस बजे हम लोग सकुशल लौट आये।

२०/प्रवास के अंतिम दिन

मेरा और अन्नदा का ५ जुलाई को 'डेल्टा एयरलाइन्स' से दिल्ली का अस्थाई आरक्षण हो गया था। उसे पक्का कराना था। फ़्लोरिडा जाने से पहले हम भारतीय दूतावास के अधिकारी ललित मानसिंह से वाशिंगटन जाकर मिले थे। हम चाहते थे कि जिस प्रकार हमें अमरीका का सन् १९९७ तक का वीज़ा मिल गया था, उसी प्रकार कैनेडा का भी पांच साल का वीज़ा मिल जाये। उसी सिलसिले में हमने ललित मानसिंह से बात की थी। वह बड़ी अच्छी तरह मिले थे और उन्होंने आश्वासन दिया था कि वह इसके लिए प्रयत्न करेंगे। अपने पासपोर्ट हम उन्हीं के पास छोड़ आये थे। पर वह संभव नहीं हुआ। उनके यहां से जर्मनटाउन काफ़ी दूर था। पासपोर्ट लाने की समस्या थी। उसका समाधान भारतीय दूतावास की एक बहन ने हमारे फ़्लोरिडा से लौटने पर कर दिया। वह घर आकर पासपोर्ट हमें दे

गईं।

तब पराग और मैं आरक्षण की पक्की व्यवस्था कराने के लिए वाशिंगटन गये। असल में मेरा टिकट 'एयर इंडिया' का था, अन्नदा का 'डेल्टा एयरलाइन्स' का। मेरा टिकट का एंडोर्समेंट 'एयर इंडिया' को करना था। उसके अधिकारी रवि सक्सेना से हमारी बात फोन पर हो चुकी थी। रवि ने बड़ी आत्मीयता से हमारा स्वागत किया और तत्काल एंडोर्समेंट करवा दिया। 'एयर इंडिया' के सामने ही 'ड़ेल्टा' का ऑफिस था। पराग वहां गया और कुछ ही समय में सारी खाना-पूरी हो गई। ५ जुलाई को हमारे रवाना होने का निश्चय हो गया।

मैंने १० अप्रैल को भारत छोड़ा था। दो महीने पच्चीस दिन का यह प्रवास रहा। इन दिनों यहां का मौसम बहुत अच्छा रहा। दिल्ली से समाचार मिला कि वहां बड़ी गर्मी पड़ रही है। सुधीर और पराग का आग्रह हुआ कि मौसम अनुकूल होने तक हम यहां रुकें, लेकिन अब अधिक समय देना संभव नहीं था। जो समय हम दे चुके थे, वही बहुत था।

फ़्लोरिडा से लौटकर पराग ने अपनी मित्र-मण्डली को दावत दी। वस्तुतः ६ जून को पराग और शिल्पी के विवाह की वर्षगांठ थी और १४ जून को पराग की सालगिरह। इसलिए यह आयोजन किया गया। १ जुलाई की रात को औटवा से नवीन सपरिवार आ गये और उसी दिन टौरेंटो से सुधीर। घर में खूब चहल-पहल हो गई।

पीछे मुड़कर देखता हूं तो लगता है कि जाने कितने समय के बाद इतने दिन इतनी बेफ़िक्री से बिताने का मौक़ा मिला। दिल्ली के बहुत कम समाचार मिले। यहां के पत्रों में तो भारत की ख़बरें

आती नहीं हैं। 'न्यूज़ इंडिया' से पता चलता रहा कि पिछले दिनों वहां किस-किस क्षेत्र में क्या-क्या हुआ। इतना बड़ा देश, तीन महीने में आखिर क्या होना था ! वही राजनैतिक खींचतान, लड़ाई-झगड़े! वही द्वेष-विद्वेष ! वही पद-लिप्सा ! वही अर्थ-लोलुपता ! 'न्यूज़ इंडिया' बड़े बेबाक ढंग से खबरें देता है।

पर मैं तो अमरीका में बैठा हूं। इतने दिनों से देख रहा हूं कि यहां राजनीति में जो भी हो, अन्य क्षेत्रों में अमरीका का नागरिक कितना विवेकशील है। वह अनुभव करता है कि जिस धरती पर वह खड़ा है, उसके प्रति उसका दायित्व है। उस दायित्व का निर्वाह वह ईमानदारी से, पूरी कर्मठता से, नहीं करेगा तो अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारेगा। देश में गंदगी होगी तो प्रदूषण का असर उस पर भी पड़े बिना नहीं रहेगा। अनुशासन-हीनता होगी तो अव्यवस्था पैदा होगी और उसके दुष्प्रभाव से क्या वह बच सकेगा ? राजनीति को खाकर कोई जीवित नहीं रह सकता। जीवित रहने के लिए भोजन चाहिए। वहां के नागरिक का प्रयत्न है कि उसे शुद्ध, पौष्टिक भोजन मिले, रहने को अच्छा मकान मिले, पहनने को कपड़ा मिले, उत्तम दवा-दारू की व्यवस्था हो। उसकी इन प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए वह पुरुषार्थ नहीं करेगा तो कौन करेगा ? जो साधना करता है, उसी को सिद्धि प्राप्त होती है। साधना कोई करे, सिद्धि किसी को मिले, यह हो नहीं सकता।

ज्यों-ज्यों उस धरती को छोड़ने का समय निकट आ रहा है, यह सारा चिन्तन मेरे मन को जकड़ रहा है। तीन महीने से जिस शुद्ध जलवायु में सांस ले रहा हूं, शुद्ध भोजन कर रहा हूं, लोगों को जी-तोड़ परिश्रम करते देख रहा हूं, वह सब यहीं छूट जायेगा और फिर मुझे

प्रदूषित जलवायु, अशुद्ध भोजन और घोर अनुशासन-हीनता के बीच जाने को लाचार होना पड़ेगा। मैंने अपना लम्बा जीवन भारत की भूमि पर व्यतीत किया है, देश का वैभवशाली अतीत देखा है और अब वह जीवन देख रहा हूं, जो पुरातन मूल्यों के एकदम विपरीत है। भारत संतों का देश है, भारत गांधी का देश है। उसे यह नहीं भूलना चाहिए। सादगी और सात्विकता के आधार पर देश के नव-निर्माण के लिए प्रत्येक भारतीय नागरिक को कृत-संकल्प होना चाहिए।

कैनेडा और अमरीका की खुशहाली आसमान से नहीं टपक पड़ी है। वह उसके नागरिकों के घोर परिश्रम, विवेक और सूझबूझ का परिणाम है। वहां के जीवन के कुछ चित्र देखिये।

२१/कुछ बोलते चित्र

• अमरीका और कैनेडा की कुछ चीज़ों की मेरे मन पर बड़ी छाप पड़ी है। सामान्यतया माना जाता है कि यहां के लोगों में स्पन्दन-शीलता नहीं है। वे एक-दूसरे के प्रति प्रेम नहीं रखते। बात ऐसी नहीं है। वृद्धों, अपाहिजों, रोगियों तथा बच्चों के प्रति मैंने उन्हें अत्यन्त सदय पाया। हम एक बहन को छोड़ने वाशिंगटन गये। बहन गठिया

से पीड़ित थीं। शरीर से काफ़ी अशक्त थीं। उनके बाएं हाथ की उंगलियों को सीधा करने के लिए ऑपरेशन हुआ था और बाहरी उपकरणों की मदद से उंगलियों को सीधा रक्खा जा रहा था। वह बहन कार में आगे बैठी थीं। जब कार हवाई अड्डे पर रुकी तो उन्होंने दाहिने हाथ से उसका दरवाजा खोलने का प्रयत्न किया, पर दरवाज़ा नहीं खुला। एक गोरी महिला वहीं खड़ी थीं। उन्होंने जब यह देखा तो सपाटे से आगे आईं और हम लोग कार से उतरकर उधर पहुंचे तबतक दरवाज़ा खोल दिया।

• इन देशों में जहां कहीं भीड़ होती है, चाहे वह बाज़ार हो या और कहीं, मैंने लोगों को धक्का-मुक्की करते हुए नहीं पाया। वे अनायास पंक्ति बनाकर खड़े हो जाते हैं और अपनी बारी की प्रतीक्षा करते हैं। जिनको जल्दी होती है, वे भी उतावली नहीं दिखाते। आदमी की बात तो दूर, कोई बच्चा तक पंक्ति नहीं तोड़ता, न कोई बड़बड़ाता है, न आंखें दिखाता है, न उतावली ज़ाहिर करता है।

• जब कई लोग कहीं प्रवेश करने को होते हैं तो जो सबसे आगे होता है, वह अक्सर दरवाज़ा खोलता है। यहां मैंने देखा है कि वह व्यक्ति स्वयं अंदर जाकर दरवाज़ा छोड़ नहीं देता। उस समय तक उसे पकड़े रहता जबतक दूसरे लोग अंदर न चले जायं अथवा कोई और आगे बढ़कर उसे थाम न ले। कहने की आवश्यकता नहीं कि यहां के सभी दरवाज़े अपने आप बंद हो जाते हैं। क्या मजाल कि किसी आदमी के एक साथ दरवाज़ा छोड़ देने पर दूसरे के चोट आ जाय।

• यहां सड़क पर यातायात बड़ी तीव्र गति से चलता है। हाईवे (राजमार्ग) पर तो उसकी रफ़्तार बहुत ही तेज़ होती है; लेकिन शहरों

के भीतर सवारियां उतनी तेज़ नहीं चलतीं। जब एक सड़क से दूसरी सड़क पर जाते हैं तो मोड़ पर 'स्टाप' (रुकिये) का संकेत लगा रहता है। मैंने देखा है कि सामने की सड़क भले ही खाली पड़ी हो, संकेत के स्थान पर मोटर थोड़ी देर के लिए अवश्य रुकेगी। इस नियम का उल्लंघन करने पर भले ही दुर्घटना न हो, पकड़े जाने पर जुरमाना भरना पड़ता है।

● स्थान-स्थान पर इन देशों में कूड़ेदान रक्खे रहते हैं। कूड़ा उन्हीं में डाला जाता है। कागज़ के टुकड़े हों, या कोक आदि के ख़ाली डिब्बे, क्या मजाल कि कोई सड़क पर फेंक दे ! मोटर में जा रहे हैं तो सारे कूड़े को एक प्लास्टिक के थैले में डालते जायंगे। जब और जहां गाड़ी रुकेगी, उस थैले को ले जाकर कूड़ेदान में डाल देंगे। छोटे-से-छोटा बच्चा भी इस सामान्य नागरिक के दायित्व से परिचित होता है। लम्बे सफर में मीलों भूमि खाली पड़ी होती है; पर गंदगी को पटकने का अधिकार किसी को नहीं है। हम लोगों ने कार से लम्बी-लम्बी यात्राएं कीं, लेकिन कहीं भी गंदगी पड़ी हुई नहीं पाई। जहां बहुत भीड़ होती है और लोग खाने-पीने की चीज़ों का इस्तेमाल करते हैं, वहां भी इस नियम का कड़ाई से पालन होता है।

● अमरीका और कैनेडा में कारों की भरमार है। शहरों में तो गाड़ियों को खड़ी करने की बड़ी भारी समस्या है। हम लोग वाशिंगटन डी० सी० गये। वहां भारतीय दूतावास घनी आबादी के बीच स्थित है। मेरा धेवता पराग गाड़ी चला रहा था। उसने हमें दूतावास पर उतार दिया और स्वयं गाड़ी को लेकर उस समय तक सड़क पर चक्कर लगाता रहा, जबतक कि उसे गाड़ी खड़ी करने को स्थान नहीं मिल गया। गाड़ी को सड़क पर कहीं भी खड़ी कर देना वहां अपराध माना

जाता है और पुलिसवाले, जो ताक में रहते हैं, अपराधियों को दण्ड दिये बिना नहीं रहते।

• अपने घर का कूड़ा-कर्कट आपको मजबूत थैलों में बंद करके रखना होता है। जिस दिन नगर-निगम की गाड़ियां आती हैं, उस दिन उन थैलों के मुंह बांधकर उन्हें सड़क पर रख देना होता है, अथवा बड़े-बड़े कूड़ेदानों में डाल देना होता है। अपने घर का कूड़ा दूसरे के घर के सामने डालने की अनुमति वहां किसी को नहीं है। ऐसा करने वाला दण्ड का भागी होता है।

• आप किसी भी दफ्तर में लोगों को गप्पें मारते नहीं पायंगे, न काम के घंटों में चाय-कॉफी पीते देखेंगे। दफ्तर का समय काम का होता है और उसका उपयोग उसी के लिए होना चाहिए। इसकी देखभाल करने के लिए वहां कोई इंस्पैक्टर या गुप्तचर नहीं होता। कर्मचारी का अपना विवेक ही उससे यह सब कराता है।

• इसमें कोई संदेह नहीं कि वहां के निवासियों के मूल्य प्रधानतया भौतिक हैं। अच्छी तरह रहने के लिए उन्हें जो सुविधाएं चाहिए, उनकी व्यवस्था वे करते हैं। पर ऐसा करने में उन्हें समष्टि के हित का ध्यान रहता है। उनमें अपने स्वार्थ को सीधा करने की कोई कल्पना नहीं करता।

• एक दिन एक मॉल में खड़े होकर मैं विभिन्न खण्डों में प्रदर्शित वस्तुओं को देख रहा था। कमीज़ें, पतलूनें, जाकटें, जूते और न जाने क्या-क्या चीज़ें थीं। एक-से-एक बढ़िया। मुझे कुछ ख़रीदना नहीं था। मैं अपनी बेटी के साथ गया था। उसे कमीज़ें, पतलून आदि ख़रीदनी थीं। वह उन्हें देख रही थी। काफ़ी देर तक जब मैं खड़ा रहा तो वहां की एक कर्मचारी बहन को लगा कि मैं जो चाह रहा हूं, वह

मुझे मिल नहीं रहा है। वह मेरे पास आई और बोली, "श्रीमानजी, मैं आपकी कुछ सहायता कर सकती हूं ?" धन्यवाद देते हुए मैंने उससे कहा, "मैं तो यहां देखने के लिए आया हूं। ख़रीद तो मेरी बेटी करेगी।" वह मुस्करा कर चली गई।

ऐसा कई बार हुआ। उनके इस व्यवहार को देखकर मैंने अनुभव किया कि वे लोग ग्राहक को कितना महत्व देते हैं और उसके साथ कितने प्रेम का व्यवहार करते हैं। वे मानते हैं कि किसी भी उद्योग में सबसे अधिक मूल्यवान इकाई ग्राहक है। उसीके संतोष पर उद्योग चलता है। अतः वे वस्तुओं की गुणवत्ता और अपने मधुर व्यवहार से ग्राहकों को पूरी तरह संतुष्ट रखने का प्रयत्न करते हैं।

• पैदल चलने वाले यात्रियों का वहां कितना ध्यान रक्खा जाता है, यह देखकर मैं चकित रह जाता था। बस्तियों को छोड़कर वैसे आपको कहीं भी पैदल चलने वाले शायद ही दिखाई देंगे। हाइवे (राजमार्ग) पर कारें इतना तेज दौड़ती हैं कि कोई सड़क पार करने की कल्पना भी नहीं कर सकता, किन्तु आबादी में चलने वाली गाड़ियों का नियंत्रण देखकर आश्चर्य-मिश्रित हर्ष होता है। लोग सड़क पार करने को खड़े हैं। न वहां मार्गदर्शन के लिए हरी बत्ती है और न पुलिस का कोई आदमी। गाड़ियां आ-जा रही हैं। लोगों को खड़े देखकर चालक तत्काल गाड़ी रोक देगा और हाथ बाहर निकालकर सड़क पार करने का संकेत करेगा। इसके विपरीत अपने देश में तो बहुत-से लोग लालबत्ती की परवा किये बिना अपनी गाड़ियां निकाल ले जाते हैं, भले ही उसमें किसी को चोट लग जाने का ख़तरा क्यों न हो।

• विकलांगों के लिए तो वहां सब प्रकार की सुविधाएं की गई

हैं। कुछ विकलांगों को अब हमारे देश में भी गाड़ियां दी जाती हैं, किन्तु अमरीका और कैनेडा में तो कोई भी विकलांग बिना गाड़ी के आपको नहीं मिलेगा। उनके लिए प्रत्येक स्थान पर सुविधाएं जुटाई गई हैं, यहां तक कि शौचालयों तथा पेशाबघरों में भी ऐसी व्यवस्था की गई है कि वे अपनी गाड़ियां अंदर तक ले जा सकें। इतना ही नहीं, उन्हें किसी सहायता की आवश्यकता होती है तो लोग उनके मांग करने की प्रतीक्षा नहीं करते। उनकी ज़रूरत को स्वयं अनुभव करके आगे आकर उनका हाथ बंटाते हैं। आखिर वे लोग भी तो देश के नागरिक हैं।

यों देखने में ये सामान्य बातें हैं, पर इन पर हमारी संस्कृति निर्भर करती है।

२२/यात्रा का समापन

आखिर ५ जुलाई का दिन आ गया। परिवार के सब लोग जर्मनटाउन में इकट्ठे हो गये। हमारे वहां पहुंचने के समय से लेकर अबतक जो भी समय साथ व्यतीत किया था, उसका एक-एक क्षण उभर कर सामने आ रहा था। उसका स्मरण मन को गुदगुदाता था, साथ ही हल्की उदासी भी पैदा करता था। कौन जाने, ऐसा अवसर अब कब मिलेगा!

शाम को सात बजकर पांच मिनट पर हमारा विमान था। हम सब डलैस हवाई अड्डे पर साढ़े पांच बजे पहुंच गये। बड़ी भीड़ थी।

'मण्डल' द्वारा प्रकाशित

लेखक की प्रमुख पुस्तकें

□

- दिव्य जीवन की झांकियां
- मुखौटे के पीछे
- जीवन-ज्योति
- सबजन हिताय
- युग-बोध
- रावी के तट पर
- मेरी जीवन-धारा
- सेतु-निर्माता
- उत्तराखण्ड के पथ पर
- जय अमरनाथ !
- रूस में छियालीस दिन
- पड़ोसी देशों में
- अजंता-ऐलोरा
- नैतिक कथाएं
- अमर कथाएं
- आदर्श कथाएं
- ज्ञान कथाएं
- आधुनिक भारत की विभूतियां
- सागर के आर-पार

□□

सस्ता साहित्य मण्डल

डेल्टा एयरवेज़ के सामने बहुत लम्बी कतार थी। सामान तुलने तथा दूसरी खाना-पूरी होने में काफ़ी समय लगा। सात बज चुके थे। अन्नदा और मैंने परिवार के प्रत्येक सदस्य से और मित्रों से विदा ली। सबके मन भरे थे। आंखें छलछला रही थीं। मिलन जहां सुखदाई होता है, वहां विछोह पीड़ादायक भी होता है। भारी मन से हम वहां से रवाना हुए। हमारा विमान एक घंटा देर से चला।

विमान में काफ़ी भीड़ थी। डलैस हवाई अड्डे से उड़ान भर कर विमान सीधा फ्रैंकफर्ट पहुंचा। हम लोग सबेरे नौ बजे वहां पहुंच गये। रास्ते में कोई असुविधा नहीं हुई।

शाकाहारी भोजन की सूचना पहले ही दे दी थी। अच्छा खाना मिल गया।

फ्रैंकफर्ट पर हमें तीन घंटे रुकना पड़ा। हवाई अड्डे की औपचारिकताएं पूरी करने में अधिक समय नहीं लगा। दूसरे विमान से बारह बजे चलकर रात को एक बजकर पांच मिनट पर बिना कही रुके दिल्ली पहुंच गये।

प्रवास पूर्ण हुआ, पर उसकी कहानी तो अनंत समय तक चलती रहेगी। जाने कितनी मधुर यादें मन को निरंतर गुदगुदाती रहेंगीं!

●